विषय-सूची

नम्र निवेदन

प्रस्तुत संकलन में परम श्रद्धेय स्वामी श्री रामसुखदास जी महाराज के रिकार्ड किए गए प्रवचनों को लिपिबद्ध कर संग्रहीत किया गया है। इसमें पुस्तक लेखन की दृष्टि से लिखे गये लेख नहीं हैं। अतः इसमें विषय और भाषा की पुनरावृति हुई है। सम्भव है कि वाक्य रचना साहित्य और भाषा की दृष्टि से सुन्दर न हो परन्तु इन प्रवचनों में अध्यात्म विषयक गूढ़ रहस्यों का प्रकाशन एवं स्पष्टीकरण हुआ है तथा सरल भाषा में गूढ आध्यात्मिक तत्वो का विवेचन हुआ है इसलिए साधारण भाषा ज्ञानवाले पाठक भी विशेष लाभ उठा सकते है।

कल्याणकामी साधन परायण सत्संगियों के लिए तो प्रस्तुत संग्रह बड़े महत्व, आदर एव उपयोग की वस्तु है क्योंकि साधक प्रायः जो भूल करते हैं (जिससे उन्हे शीघ्र भगवत्प्राप्ति नहीं हो रही) उन भूलों का निराकरण इन प्रवचनों मे किया गया है। भगवान् ही अपने हैं, संसार कभी भी अपना नहीं है, नाम महिमा, शरणागति का रहस्य, अपने अनुभव का आदर प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग की महत्ता आदि विषय इस संग्रह में विशेषता से आये है, परन्तु शरणागति का विषय प्रस्तुत संग्रह में कई बार आया है। इसका रहस्य भी खोला गया है इसलिए इस संग्रह को "शरणागति रहस्य" शीर्षक दिया गया है।

प्रस्तुत संकलन में प्रवचनों की भाषा और शैली का मूल रूप अक्षुण्ण बनाए रखने का भरसक प्रयास किया गया है ताकि जिन्हे परम श्रद्धेय स्वामी जी महाराज के प्रवचनों के सुनने का सुअवसर मिला है उन्हे ऐसी अनुभूति होगी कि जैसे पूज्य श्री स्वामी जी महाराज प्रत्यक्ष सामने ही बोल रहे हैं।

परम श्रद्धेय स्वामी जी के भावों को जैसे मैंने सुना समझा वैसे ही प्रकाशित करने की चेष्टा की गयी है परन्तु आध्यात्मिक गूढ़ भावों को पूरी तरह न समझने के कारण भावों को प्रकट करने मे मुझसे भूल हो गया हो उसके लिए मैं क्षमा याचना करता हूँ। जो भी लौकिक और पारलौकिक उन्नति चाहते है और इसी जीवन में शीघ्रातिशीघ्र भगवत्प्राप्ति करना चाहते हैं उनको इस पुस्तक का अध्ययन, मनन अवश्य करना चाहिये। यही मेरी विनम्र प्रार्थना है।

चैत शुक्ला ९ सं० २०३८
कलकत्ता

विनीत :
प्रकाशक

पुस्तक प्राप्ति के स्थान :—

१ धीरजमल गुप्ता

७ ए. क्लाइव रो, कलकत्ता—७००००१

२ प्रेमराज मूँधड़ा

३ सी, नूरमल लोहिया लेन कलकत्ता—७००००७

प्रथम संस्करण ५,०००

मूल्य दो रुपये पचास पैसे

मुद्रक

वृज मोहन गुप्ता ६ ए बालमुकुन्द मक्कर रोड, कलकत्ता-७००००७





(१) "संसार से अप[illegible]" मानने से
भगवत्[illegible]

प्रश्नः- कल अपने बात चली थी कि शरीर, इन्द्रियो, मन बुद्धि की तरफ मत देखो, इनसे अपनी स्थिति की तुलना मत करो, इनको तरफ देखो ही मत, चाहे यह कितने ही अच्छे हो जाये तो भी इनसे अपनी तुलना मत करो तो आज इस बात के विषय को ही खुलासा कीजिये।

उत्तरः- यह वात बहुत बढिया है। बहुत ही समझने की बात है। आप लोग भगवत् वचनो पर तो विश्वास करो और अपने अनुभवो को ठीक आदर की दृष्टि से देखो। यह दो वाते हैं, भगवान् के वचनो पर विश्वास और अपने अनुभव का आदर कुछ भी नहीं हो तो, कम मे कम अपने अनुभव का आदर करो नास्तिक भी तो अपने अनुभव का आदर करता है

भगवान् कहते है कि ,ममैवांशो, (गीता १५।७) यह जीव तो है मेरा अंश और 'मन :- षष्ठानि इ द्रियाणि' (गीता १५।७) है प्रकृति का अंग। प्रकृति का अंश न वताकर प्रकृति मे स्थित बताया है मन, इन्द्रियां आदि को और जीव को अपना अ श वताया है। तात्पर्य यह है कि जीव :—

मेरा अ श होने से मेरे में स्थित है और मन इन्द्रियाँ आदि प्रकृति का अंश प्रकृति मे स्थित है। ये मन इन्द्रियां आप मे स्थित है नहीं। और आप इनमे हो नहीं। इस वास्ते 'कार्यकरण' कर्तृत्वे हेतुः प्रकृति रुच्यते। पुरुषः सुख दुखानां भोक्तृत्वे हेतु रुच्यते।।" कहा है। (गीता १३।२०) कौन भोक्ता है सुख दु.ख का ? कि पुरुषः प्रकृतिस्थोहि, (गीता १३।२१) जो मनः षष्ठानी न्द्रियाणि। प्रकृति स्थानि (गीता १५।७) है उस प्रकृति मे आप स्थित होते हो तव भोक्ता वनते हो। यहाँ "प्रकृति स्थानि" कहा और वहां पुरुषः प्रकृतिस्थों हि भूड़्ते प्रकृति जान्गुणान् (१३।२१) कहा। और इसीको आगाड़ी वताया कि "देहे ऽस्मिन्पुरुषः परः" (१३।२२)। तात्पर्य है कि इस देह मे रहने वाला पुरुष विल्कुल अलग है, पर है, केवल प्रकृतिस्थ होने से भोक्ता वनता है।

तो यह तो हुआ सिद्धान्त, भगवान् के वचन। और अब आप अपने अनुभव की तरफ ख्याल करो कि आप अपने शरीर को, इन्द्रियों को, मन को, बुद्धि को, जिनको भी आप अपना मानते हो, उनको क्या आप अपने अधिन पाते हो ? अपना अनुभव करो कि अपने अधीन अपना शरीर है क्या ? इन्द्रियां अपने अधीन हैं क्या ? मन अपने अधीन है क्या ? बुद्धि आदि संसार की कोई भी वस्तु, जो प्रकृति वस्तु है, उसके ऊपर आपका वश चलता है क्या ? तो उत्तर होगा—नहीं। आपका वश नहीं चलता तो यह सब हमारे नहीं हैं —यह बात सिद्ध हो गई ! हमारे होते तो इन सब पर हमारा वश चलता। हम जैसा रखना चाहते वैसा रख लेते परन्तु हम नहीं रख सकते तो यह हमारे हैं, यह कैसे माना जाय ? हमारे को ये मिले हैं। शरीर, यह हमारे को मिला है, और छूट जायेगा। तो मिला है छूट जायेगा तो अपना कैसे हुआ ? अपने बैठने के लिए यह छप्पर और जगह मिली है तो यह हमारी हो गई क्या ? और इसका तो कुछ समय भी है कि इतने समय तक आप ठहर भी सकते हैं परन्तु इस शरीर का तो कोई समय भी निश्चित नहीं। कोई पता नहीं, न जाने कब छूट जाये शरीर, इतना कच्चा मामला है। तो फिर हमारा शरीर कैसे हुआ ? तो यह अपना है ही नहीं।

जब अपना शरीर नहीं है, तो अपना कौन है ? तो भगवान् कहते है 'ममैवांशो जीव लोके" यह मेरा अंश है। तो यह भगवान् का अंश है, यह तो भगवान् की वाणी हुई। और अनुभव अपना क्या है कि मैं किसी न किसी का तो हूं ही। क्योंकि हमारी आदत है कि हम किसी न किसी का आश्रय लेते हैं, शरण लेते हैं, तो कोई न कोई आश्रय हमारा है। अभीतक हम उसको पकड़ नहीं पाये, पहचान नहीं पाये, यह अलग बात है। क्यों नहीं पकड़ पाये ? कि जैसे अश होता है वह अंशी पकड़ नहीं पाता। घडे मे पृथ्वी भरी नहीं जा सकती परन्तु घड़ा मिट्टी का अंश है तो घडा पृथ्वी मे लीन हो सकता है। परन्तु सम्पूर्ण पृथ्वी को घडे को मे कैसे भरा जा सकता है ? ऐसे ही हम दूसरी चीजों को तो समझ लें, परन्तु परमात्मा को अपने कब्जे मे नहीं ला सकते। और हम परमात्मा के अंश हैं हम किसी न किसी के अधीन रहते है, हम किसी न किसी का सहारा लेते हैं तो कोई न कोई

हमारा मालिक है। अब 'वह कौन है इसका पता नहीं तो वह ईश्वर है। सन्त-महात्मा कहते (भगवान् कहते है।) "ईश्वर अश जीव अविनाशी।" ईश्वर के तो हम हैं, और ईश्वर हमारा है। प्रकृति और प्रकृति का कार्य हमारा नहीं है और हम इनके नहीं हैं। इसमें सन्देह है क्या ? ध्यान देना अब इतनी बात मे सन्देह नहीं है न ? बिल्कुल सन्देह नहीं है।

अब मैं जो अगाड़ी बात बताता हूं, उस पर ख्याल करो। आप ऐसे सदा ईश्वर के हैं तो केवल जो सदा उसके है, "उसको अपना मान लें और अपने को उसका मान लें —यह अब साधन की बात है। आप ऐसे हैं? वह तो विवेक की, सिद्धान्त की बात है। और अब साधन क्या है ? कि उस पर परमात्मा के हम हैं। वह परमात्मा हमारा है। और संसार हमारा है नही, और संसार के हम नहीं हैं। ऐसा मानना यह साधन की बात हैं। पहले वाली बात तो ज्ञान की थी और यह सावन है। इस वास्ते अब इस बात को दृढता से मान लो।

अब इसके मानने के बाद आपको बड़ी भारी गलती क्या होती है कि 'हमारा मन ऐसा होना चाहिए, हमारी बुद्धि ऐसी होनी चाहिए, हमारी इन्द्रियां ऐसी होनी चाहिए, हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए,' यह एक लालसा रहती है मन मे। तो यही खतरनाक चीज है। जब आपका शरीर नहीं, आपका मन नहीं, आपकी बुद्धि नहीं, आपकी इन्द्रियां नहीं और आपका व्यवहार भी आपकी नहीं, तो फिर इन से होने वाली क्रिया मे आप की कैसे हुई ? यह सब के सब प्रकृति का है। क्योंकि जब इन्द्रियां आपकी नहीं तो उनकी (इन्द्रियो का) व्यापार आपका कैसे हुआ ? मन आपका नहीं तो मन की चंचलता आपको चचलता कैसे हुई ? बुद्धि आपकी नहीं तो बुद्धि का सन्देह तथा भ्रम आपका कैसे हुआ ? व्यवहार तो हमारा है, पर जब शरीर आपका नही तो शरीर का व्यापार-व्यवहार आपका कैसे हुआ ? और जब आपके ये हैं ही नहीं तो फिर यह सब ठीक होने चाहिए, वेठीक नहीं होने चाहिए यह पचायत भी क्यो ? आप कहे कि लक्षण आदि शास्त्रो मे जगह-जगह ऐसे लक्षण लिखे हैं कि "अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः

करुण एवच"। निर्मम, निरहंकार आदि" (गीता १२।१३)। अतः यह सब होने चाहिए। तो, 'यह होना चाहिए, तो इसके लिए आप निर्ममो निर-हंकार, हो जाओ कि यह सब हमारा नहीं है। यह मैं नहीं हूँ। यह मैं नहीं तो अहंकार गया और मेरे यह नहीं है तो ममता गई। तो निमर्म-निरहंकार हो गया।

हम क्या करें ? तो बताया कि निर्मम-निरहकार हो जाओ। यह बात है इसमें एक बिल्कुल विशेष अटकल बताता हूं। एक विद्या बताता हूं उस पर आप ध्यान दें। साधन मे खास युक्ति बताता हूं, इस पर आप विशेष ध्यान दें। वह क्या ? कि मन कैसा ही हो, और बुद्धि कैसी ही हो, इन्द्रियां कैसी ही हो, शरीर कैसा ही हो और व्यवहार कैसा ही हो, **इनकी तरफ आप देखो ही मत क्योंकि यह हमारा है ही नहीं**। हमारा है ही नहीं, बस। आप कहो कि बात तो आप ठीक कहते हो परन्तु लक्षण तो ठीक रहना चाहिए न, तो लक्षण अपने करना ही नहीं। लक्षण होते हैं ज्ञानमार्ग वालों के, जो अपने उद्योग से करते हैं। उनके होते हैं, जो पुरुषार्थ करके भगवान् की शरण होते हैं और तत्वज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, जो पुरुषार्थ करके उस परमात्मा को प्राप्त करते हैं, उनके लिय लक्षण होते हैं। हमने तो इन सबको छोड़ दिया और भगवान्‌के शरण हो गये इस वास्ते अब लक्षणों की हमे जरुरत नहीं। हम तो भगवान् के हैं और यह सब शरीर किसके हैं ? कि प्रकृति के हैं। आस्तिक दृष्टि से भगवान् के हैं और ज्ञान की दृष्टि से प्रकृति के हैं, मायामात्र है और संसार की दृष्टि से संसार की है। स्थूल दृष्टि से देखा जाये तो विल्कुल संसार के साथ इनकी एकता है। इस स्थूल शरीर की स्थूल ससार के साथ एकता है। और सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म ससार के साथ एकता है। और शरीर के कारण संसार के साथ एकता है। बिल-कुल प्रकृति के साथ इनकी एकता है। संसार के साथ इसकी एकता है। जो स्थूल संसार दिखता है इसके साथ इसकी एकता है। किसी के भी साथ एकता हो, हमारे साथ इनकी एकता नहीं है, यह बात तो अपने अनुभव से बिल्कुल पक्की है। अतः आज से अब इनमे लक्षण आप न देखें।

आप कहते है कि देखते तो नहीं परन्तु हमारे मन में संकल्प-विकल्प हो जाते है। क्या करें ? हम नहीं चाहते है और हो जाते है तो अब इस बात पर आप क्या ध्यान देना। आपको इसके लिये बहुत बढ़िया बात बताता हूं। आप कहते है कि संकल्प-विकल्प हो जाते है तो संकल्प-विकल्प आप करते है कि होते हैं ? आप कहते हैं कि होते है। तो जो स्वतः होते है, उन्हे आप करते नहीं, आप करना चाहते भी नहीं, दोनों बात ठीक हैं। आप संकल्प-विकल्प करते नहीं है और संकल्प-विकल्प करना चाहते भी आप नहीं, तो बिना चाहे और बिना किये हुआ हो, उसमें सुखी-दुःखी होना क्या यह कोई न्याय की बात है ?

जिन हिंसाओ को, जिन हत्याओं को आप नहीं करते, उन हत्याओं का आपको पाप लगेगा क्या ? आप चाहते भी नहीं, अनुमोदन भी नहीं करते, वह गौ हत्या क्या आपको लगेगी ? नहीं ऐसे हो संकल्प-विकल्प आप करते नहीं और करना नहीं चाहते तो आपको उस संकल्प-विकल्प से क्या होगा ? हमे उससे कुछ नही होता, वे (संकल्प-विकल्प) चाहे होते रहे। केवल इतनी सावधानी रखनी है कि हम करें नहीं। हमारो वस्तु (मन) ही नहीं और उसके द्वारा सकल्प-विकल्प होता है, उसका आप कभी अनुमोदन करते हो और कभी उनका विरोध करते हो और उस मन को निर-विकल्प करना चाहते हो तो यह सब अनाधिकार चेष्टा है। यह बात तो उस विभाग की है जो आदमी उद्योग करते है , ज्ञानयोग का अभ्यास करते है। उद्योग करके हम मन को ऐसा बनायेंगे, बुद्धि को ऐसी बनायेंगें, इन्द्रियों को ऐसी बनायेंगे, यह ज्ञानयोगी की (उनका) काम है। जब विवेक साफ हो गया कि यह सब शरीर इन्द्रियां मन-बुद्धि आदि हमारे नहीं हैं तो इनको शुद्ध करने का काम हमारा कहां रहा ? यह हमारा बिलकुल काम नहीं है।

इस वास्ते मैंने कहा था कि दूसरे साधक है वे घबरा सकते हैं परन्तु आप लोग घबराते हैं मेरे लिए यह बडे आश्चर्य की बात है। आपके यह सब है ही नहीं तो फिर यह (संकल्प-विकल्प) जो होते हैं वे होते रहे। आप इनको करते नहीं और करना चाहते नहीं, फिर उनमें आप सुखी-दुःखी मुफ्त

में क्यो होते हो ? अब इसमे शंका हो, सो बोलो। खूब कसके शंका करो, बढ़िया सी।

मेरी तो प्रार्थना यही है कि इसको कसौटी पर मत कसो। मन कैसा ही हो, बुद्धि कैसी ही हो, इन्द्रियाँ कैसी ही हों, प्राण कैसे ही हो, शरीर कैसा ही हो-यह सब हमारे नहीं है। बस, खतम हुआ काम। अब जब हमारा नहीं है वह कैसे ही हो, उससे हमारे को क्या मतलब आपने जब किसी को दे दी चीज, तो देने के बाद मे उसकी चिन्ता आप क्यो करते हो? अब वह करे। जिस दिन आप इस सबसे अपनापन छोड़ देंगे, उस दिन यह सब शुद्ध हो जायेंगे। यह अशुद्ध ही अपनापन के कारण से है। भगवान के जब बताशे का भोग लगा देते है तब लोग उसका कण का कण लेते हैं। क्योंकि वह परम पवित्र शुद्ध हो गया ऐसे ही आपने इनको छोड़ा कि ये और शुद्ध हुए। अशुद्धि असली खास यही है कि आप इनको अपनी मानते हो, इन पर अपना कब्जा मानते हो इसके सिवाय और कोइ अशुद्धि नहीं है। "ममता मल जर जाय" यह ममता-मल है। "यह कैसे है" "कैसे नहीं है" यह सोचते ही ममता हो जायगी। अपनापन हो जायेगा। अपनापन होने से भगवान् के अर्पण नहीं होगा।

इस वास्ते इनकी तरफ ख्याल ही मत करो। आप कहे कि यह ख्याल करते तो नही है पर ख्याल आ जाता है ख्याल आ जावे तो आजाओ; कोई बात नहीं, ख्याल करो मत। आजाती है, तो आपसे आप आती है उसकी पंचायत आप क्यों करते हो? ख्याल आ गया तो आ गया, आपको दीख गया तो दीख गया। आप को उसकी परवाह मत करो। दीख गया; न दीख गया, अपना दीख जाय, न दीख जाय, इसको भी बेपरवाह कर दो क्योंकि अपना नहीं है। अब इसमें शंका हो, सो बोलो।

हम तो भगवान् के है। अब लक्षण भगवान् जानें, हमे कोई मतलब नहीं है। यह जो साधन मैंने बताया है, ऐसा साफ साधन बताने वाला मेरे को कोई मिला नहीं। ऐसा आपको बताने वाला मिल गया फिर आपको क्या घबराने की बात है? जिसको बताने वाला नहीं मिलता उसको तो यह बात हो जाती है कि क्रिया करेगी, उद्योग करोगे, तब प्राप्ति होगी।

परन्तु यह मार्ग जो मैं बताता हूँ, वह बिलकुल उद्योग साध्य है ही नहीं। इसके समझते ही अभी, अभी, आप जीवनमुक्त है इसी क्षण। कैसे ? कि जो बदल रहा है वह हमारा नहीं है ऐसा मानते ही मुक्त हो गये। बन्धन तो यही है कि जो बदल रहा है उससे अपना समबन्ध मानते है। अपना सम्बन्ध मानना यही तो बन्धन है और बन्धन क्या है ? यह हमारा नही और हम इनके नहीं। बस, मुक्त हो गये आप। अब ख्याल में यह बात आपके आगई होगी। आगई तो, बस।

इस बात मे जब कभी सन्देह हो, खलबली मचे तो चट आकर मुझ से बात करो, पूछो। फिर पूछ कर सन्देह निकाल दो। बस, बात इतनी ही है। समझ मे आजाय तो उसी समय जीवन मुक्ति है क्योकि जीवनमुक्ति तो स्वतः है और उसका अनुभव हो जाता है, बस। अब बोलो।

शंका :- महाराज जी एक बहम रहता है कि इस बात मे पोल तो नही है। यह बहुत भ्रम रहता है। - (केशवरामजी अग्रवाल)

उत्तर :- भ्रम रहता है, यह बात एकदम सच्ची है। बम्बई मे बच्चू भाई हैं। कई जगह सत्यसग का आयोजन करते है और वेदान्त का अभ्यास है। पर मन लगता नहीं है, उसको मैंने यह बात कही तो वह इतना राजी हुआ कि महाराज जी हम तो आफत में पडे हुये थे, इन सबको ठीक करने मे और इन सब से अपनापन छोड़ देंगे तो सारी आफत ही मिट जायेगी। वे बहुत ही राजी हुए। उनकी उम्र बीत गई, वेदान्त का विचार करते/करते परन्तु यह बात उनको भी नही मिली थी। तो यह बात सुन कर वे बहुत राजी हुये।

शका :- महाराज जी अब मैं भगवान के शरण हो गया तो मेरी सारी क्रियायें भगवान के अनुकूल ही होगी न ? -(श्री सत्यनारायणजी-पंसारी)

उत्तर :- क्रियाये क्या होवें, क्या नही होवे, यह आप देखो ही मत। भगवान् के लिए होती हैं कि अपने लिये होती है, यह देखो ही मत। हम भगवान के है और यह शरीर आदि सब भगवान को दे दिया तो अब इसकी क्रिया भगवान जाने। क्रियाओ की तरफ देखना

यह अपनापन है। अपनापन आप छोड़ दो। यह अपनापन जितना अनर्थ कारक है इनती क्रियाओं को गलती अनर्थ कारक है इतनी क्रियाओं की गलती अनर्थ कारक नही है। ध्यान देना। जितना इनमें अपनापन आपके लिये खतरनाक है, अनर्थ कारक है, उतना आपका व्यवहार, जो बिगड़ेगा वह उतना अनर्थ कारक नहीं होगा, नही होगा/नही होगा क्योकि आपका व्यवहार नही है। जब आपका व्यवहार ही नही तो व्यवहार आप पर क्यो लादा जायेगा ? दुनिया मात्र मे बड़ी-बड़ी हत्याएं होती है, बड़े-बडे पाप होते है, चोरी होती है, डकैती होती है-उसका आपको पाप लगता है क्या ? तो आपने जब इनको अपना नही माना तो इनकी जिम्मेदारी आप पर क्यो हुई ? अपना मानना है यह जितनी खतरनाक चीज है, खराब चीज है उतना इसके द्वारा दुराचार है, वह खतरनाक नहीं है। क्योकि अपना मानने से ही तो अपने पर उसकी आफत और भार आता है और अपना है ही नहीं तो आप पर आयेगा ही कैसे ? ख्याल हीयही रखो कि यह सब हमारा नही है बदलने वाला हमारा नहीं है, बदलने वाला हमारा नही है, यही ख्याल रखो बस, अपनापन आते ही कि यह तो हमारा नहीं है तो वहीं शुद्ध हो जायगा। सब क्रियायें शुद्ध हो जायेंगी।

किसी दृष्टि से अपनी नही है। सांख्य से, योग से, न्याय से, वैशेषिक से, मीमांसा से, उत्तर मीमांसा से, किसी भी सिद्धान्त से यह आपके नहीं है। किसी भी दार्शनिक की दृष्टि से हमारा नहीं है तथा व्यवहार की दृष्टि से, अनुभव की दृष्टि से, गीता की दृष्टि से भी हमारा है ही नही। केवल इतनी ही बात पर यह जोर रखो कि यह हमारा नही है, नहीं है। यह सब प्रभु का है और हम प्रभु के है। यह हमारा है ही नहीं। केवल इतनी ही बात पर दृढ़ रहना हैं और कुछ नहीं करना है। जहाँ अपना माना और वही फंसा। अपना है नही और अपना मानलिया तो वेईमानी है। अपना है नहीं और अपना मान लिया-यह ईमानदारी नही है।

यह मैंने बहुत बार कहा है कि वेईमानी ही बन्धन है। मुक्ति क्या है कि ईमानदारी क्या है। वेईमानी क्या है कि अपनी नहीं है उसको अपनी मान लेना वेईमानी है। जहाँ वेईमानी छूटी कि उसीक्षण आप मुक्त हैं। जिनको आपने अपनी नहीं मानी है, उसका बन्धन क्या आज भी है ? संसार मे अरबों रुपये पडे है। उनमें उथल पुथल हो जाय, नुकसान हो जाये

तो आपके ऊपर असर होता है क्या ? क्यों नही होता ? क्योंकि उनको आपने अपना नही माना है इसके सिवाय और क्या कारण है ? बताओ। जीवमात्र मरते है। मनुष्य मरते है। उनका हमे शोक नही होता, क्यों नहीं होता ? क्योकि उनको हमने अपना नही माना। जिनको अपना माना उनके मरने से ही तो शोक होता है। तो अनर्थ अपना मानना है। और इनको अपना मानना ही बन्धन है, यही गुत्थी है और कोई गुत्थी नहीं है। शरीर को अपना माना, इन्द्रियों को अपनी माना, मन को अपना माना, बुद्धि को अपनी मानी, व्यवहार को अपना माना, रुपयो को अपना माना, परिवार को अपना माना, घर को अपनो माना। बाहर की संपत्ति को अपनी माना है, बस यही गुत्थी है। अपना मानना ही गुत्थी है और गुत्थी कुछ नही।

शका :- एक गुत्थी और मालूम देती है कि अगर भगवत्-प्राप्ति, जीवन-मुक्ति इतनी सरल होती तो सबको प्राप्त हो जाती। यह एक वहम है-

(श्री केशवरामजी अग्रवाल)

उत्तर :- देखो, इसका उत्तर बताऊं कि वास्तव मे तत्व कठिन नही है, आप क्षमा करना। इस बात को ठीक-ठीक बताने वाला नही मिलता है। बात यह है कि जो चीज है उसका मिलना क्या कठिन है ? जैसे ससार का काम बडे उद्योग से, बडे परिश्रम से होता है वैसा ही इसमें उद्योग तथा परिश्रम होगा, यह लोगो ने अटकल लगा रखी है। परन्तु बात यह है नहीं। आपको विश्वास दिलाने के वास्ते कहता हूं कि मेरे भी बहुत वर्षों तक यह बात थी परन्तु मेरे को ऐसी बात बतलाने वाला मिला नहीं। आपको इतनी बतला दी कि मेरे को ऐसा बताने वाला मिला नहीं है। अब इससे बढ कर और क्या बताऊ ? बात यह है कि यह कठिन चीज नहीं है परन्तु इस बात को बताते ही चट ताला खुल जाता है। ताला है, ताली अपने पास मे है, अब कहाँ लगावें, कैसे लगावें, ताला खुल नही रहा है अगर जानकार बतावें कि अरे। यहां लगाओ तो खुल जायेगा तो उस प्रकार लगाते ही पट खुल जाता है, परन्तु बिना बताये पता नही लगता है।

मैंने देखा था बड़ा ताला, परन्तु उसको देखने पर चाबी लगाने की जगह नही दीखती थी और चाबी पास मे पड़ी है। और जब मालूम पड़ा कि जहा कुदा लगा हुआ है वहां एक छेद है उसमे एक किला लगाते ही एक पत्ती दूर हो जाती है, उसके नीचे चाबी लगाने को जगह है। इधर से किला लगाया कि इधर से चाबी लगाने की जगह खुलने पर चाबी लगाते ही ताला खुल गया। अब वह छेद कुन्दे के पास मे था परन्तु बताने से पता लगा, खूब मोटा ताला था। तोड़ने पर भी टूटने वाला नही। इसी तरह बताने वाला हो तो भगवत्-प्राप्ति भी उसी क्षण हो जाती है।

अब आपको दूसरी दृष्टि से, आस्तिक दृष्टि से बताता हूँ कि परमात्मा सब जगह है कि नहीं? जहां आप हो वहां परमात्मा है कि नहीं? वहां है तो फिर मिलने मे देरी क्यों? अब चाहे प्रेम हो चाहे मत हो, जो 'है' वह देखेगा ही, प्रेम नही सही। हमारा एक वस्तु मे प्रेम नहीं है पर वह सामने होने पर दीखेगी नहीं क्या? यह परमात्मा है तो पर आप देखना चाहते नहीं इसलिये परमात्मा दीखते नही। देखने की चाहना तो चाहिए ही। चाहना जरूर आपके घर को होनी चाहिये और कुछ भी जरूरत नही। कोई अधिकारी की जरूरत नहीं। कैसा मन है, कैसा अंतःकरण है, आदि किसी बात की जरूरत नही। केवल आपकी चाहना होनी चाहिए। अगर आपकी चाहना ही नहीं है तो परमात्मा का क्यो अनुभव होगा? क्यो दर्शन होगा, बताओ?

आप इतनी कृपा करो कि शरीर-इन्द्रियां-मन-बुद्धि हमारी नहीं हैं, यह मान लो और शंका हो तो फिर शंका पूछो।

शका :- महाराज जी आपकी बात मानने पर भी भीतर से खींचातानी होती है, क्या करें। मन मानता नही, क्या करें?

उत्तर :- देखो, आप अपनी कन्या का दान कर देते हो और वह अपने ससुराल जाते समय मां से मिलती है, भौजाइयो से मिलती है, बड़ी-बूढ़ी से मिलती है और रोती है और आप भी जब वह ससुराल जाती है तो रोते है तो बताओ जब आपने उसका विवाह कर दिया तो क्या वह अब

आपकी चीज रही है ? आपने तो कन्यादान कर दिया। अब वह दूसरों की हो गई फिर अब वह जाती है तो आप क्यों रोते हो ? परन्तु रोना आ जाता है। छोरी की मां के आंसू आता है। छोरी के आंसू आता है। तो आंसू आने से क्या वह आपकी हो गई ? कारण क्या है कि इतना दिन वह साथ मे रही, इसलिए अपनापन दीखता है। विवाह करने मात्र से अब उससे अपनापन वह नहीं रहता, जितना कि विवाह से पहले अपनापन था। इसी तरह अभी मन-बुद्धि-इन्द्रियां शरीर से अपनापन दीखता है, वह अपना नहीं मानने से, इससे अपनापन हट जायेगा। इनमें अपनापन दीखता है अपनापन है नहीं। ये हमारे नहीं है इस पर दृढ रहो। जैसे अब कन्या हमारी नही है, इसी प्रकार शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि हमारी नहीं हैं, बस। और कन्या भी यही मानती है कि मेरा तो घर यह नहीं है, मेरा तो ससुराल वाला घर है। यह तो मेरे पिताजी का, भैया घर है, मेरा नहीं है। यही गुरु-शिष्य का सम्बन्ध होता है। हमारे यह गुरु हैं, बस, मान लिया, अब उसके लिए अभ्यास करना पड़ता है क्या ? मान लिया तो मान लिया, बस। जब तक हम उस मान्यता को नहीं छोड़ेंगे तब तक छुड़ाने की ब्रह्माजी की भी ताकत है क्या ? तो माना हुआ सबध भी जब इतना दृढ़ हो जाता है तो परमात्मा का तो सबंध स्वतः है "ममैवांशो जीवलोके" (गीता १५।७)। इस वास्ते इसे मान लें कि परमात्मा हमारे हैं और शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि हमारी नहीं है, बस,। आप माने तो भी परमात्मा हमारे हैं। नहीं माने तो परमात्मा हमारे "है"। बात तो यही सच्ची है। अब केवल मानने की जरूरत है। आप जानो, चाहे न जानो। मानो, चाहे मत मानो, बात तो यही रहेगी। केवल गलती को न मानना ही है। और कुछ नहीं, बस। अब उसके लिये देरी का क्या काम है ? केवल इधर ख्याल कराने वाले ही कम है।

नारायण नारायण नारायण नारायण

सरदारशहर घोरा

१४ जलाई ७६, प्रातः ५।

(२) "अनुभव का आदर"

दो बातो का हमे अनुभव है कि एक ये दीखने वाली वस्तु है और एक इनको देखने वाला है। दीखने वाली वस्तु बदलती रहती है। और वास्त-विक देखने वाला है वह बदलता नही है। कई दृष्टियो से (आँख, मन आदि से) दीखता है। 'मैं देखने वाला हूँ' ये देखने वाला जो हूं बना है ये भी बदलता है। ये भी दीखने वाला है परन्तु वास्तव मे देखने वाला है वह नहीं बदलता है। जैसे ससार दीखता है, ऐसे ही शरीर भी दीखता है। देखने वाला दीखता नहीं है। जैसे आंख से हम सब ससार को देखते हैं। किन्तु आंख से आख नहीं दीखती। दर्पण में भले ही चाहे देख लें। दर्पण में देखने पर भी आंख में जो देखने की शक्ति है, वह नहीं दीखती। जिसमे वह शक्ति रहती है उसका स्थान आंख दीख सकती है, कांच मे परन्तु शक्ति देखने की जो-शक्ति है वह दीखती नही है। जिससे देखते है वह देखने की है। ऐसे हम जिससे जानते है संसार को, वह जानने की शक्ति है। जानने में आने वाला है ये संसार। यह (संसार) जानने वाला नही है।

ससार को जो जानने वाला है 'वह' और शरीर मे देखने वाला है वह है एक। जानने मे आने वाला संसार और शरीर-ये बदलता है। बचपन से आज तक देखा जाय तो ठीक यह अनुभव होता है कि शरीर बदल गया परन्तु मैं तो वही हूँ, जो बचपन में था। अपना निरंतर रहनापन और शरीर का बदलनापन दीखता है। ऐसे ही मात्र संसार मे परमात्मा का रहनापन और ससार का "बहनापन" दीखता है। 'परमात्मा है'-ऐसा हम मानते हैं और 'संसार बदलता है'-ये हम जानते हैं। ऐसे ही हम है, ऐसा हम अपने को मानते हैं और शरीर बदलता है ये हम जानते है। तो जानने में आने वाला संसार और शरीर ये रहने वाला नही है, बदलने वाला है। हम और परमा-त्मा, ये रहने वाले हैं हमारा और परमात्मा का सम्बन्ध नित्य है। और शरीर और संसार का प्रबन्ध है। इसको भी नित्य कह दें पर नित्य है ही नहीं ये। परन्तु सम्बन्ध इसका है। इनकी एक ही जाति है। ये शरीर और ससार एक जाति के हैं। बदलने-बदलने वाले एक हैं। और हम और परमात्मा एक जाति के हैं, जो नहीं बदलने वाले हैं। हम जब बदलने वाले के आश्रित रहेगे, अधिन रहेगे, इसके भरोसे रहेगे, तो दुख पायेंगे। ये ही

कारण है। हम नहीं बदलने वाले हैं और भरोसा रखते हैं, बदलने वाले को। आश्रय रखते हैं बदलने वाले का। महत्व देते हैं बदलने वाले को। श्रेष्ठ मानते हैं बदलने वाले को। ये श्रेष्ठ है नहीं इनका महत्व है नहीं। यह तो बदलता है हरदम। इसकी क्या इज्जत है ? तो इसको क्या प्यार करें ? इन्हे तो बदलने वाले की सेवा में लगा दें। शरीर को, पदार्थों को संसार की सेवा में लगा दें ! बदलने वाला बदलने वाले के ही अर्पण कर दें। और नहीं बदलने वाला, वह नहीं बदलने वाले के अर्पित हो जाय। हम भगवान् के हैं, भगवान हमारे हैं। शरीर संसार का है, संसार शरीर का है। ये दो विभाग हैं। इनमें बात बढ़िया यह है कि शरीर के लिए संसार नहीं है। संसार के लिये शरीर है। हमारे लिए परमात्मा नहीं है, हम परमात्मा के लिये हैं। ये ऊंची स्थिति है।

एक आदमी ने सुना कि रूपये के पास रूपया आता है। जिसके पास रुपये बहुत हैं उसके पैदा बहुत होती है। जिसके पास थोड़े हैं तो पैदा भी थोड़ी होती है। नहीं हैं तो पैदा भी नहीं होती है। वह बाजार मे गया और रूपया बजावे। रूपये के पास रूपया आता है। पर उसके पास पैसा भी आया नहीं फिर वह एक दुकान पर गया तो वहां रूपये पडे थे, उनके पास रूपये को बजाया। रूपया उछलकर रूपयो में गिर गया। तो कहा-रूपये के पास रूपया आता है; एक दम बात ठीक है। क्या हुआ ? रूपये के पास रूपया आता है, ये ही हुआ और क्या हुआ ? मानो ज्यादा रूपये थे, उनके पास एक रूपया चला गया। अब एक रूपया तो रूपयों को नहीं खींच सकता न ? ज्यादा रूपये तो एक रूपये को खींच सकते हैं। ऐसे ही ये ससार है। इसके लिए ये शरीर है। यह ससार शरीर के लिए नहीं है। हम कहते हैं संसार शरीर के लिए है, यह गलती होती है। इस वास्ते संसार की सेवा मे शरीर को लगा दें। हमारी कहलाने वाली जितनी वस्तु हैं, वह थोड़ी है और हमारी न कहलाने वाली वस्तु संसार की ज्यादा है। संसार की सेवा मे हमारी जो थोड़ी वस्तु है उनको लगाने की नियत बना लें, भीतर से। नीयत जो हम बनाते हैं न कि

संसार से हम सुख ले लेंगे। धन हम ले लेंगे, हम कुटुम्बियों से सुखी हो जायगे। संसार को लूट कर ले लेंगे, तो भाई ! दुःख पाना पडेगा। इसमे सुखी होने की नीयत करना ही गलती होती है। सुखी कब होगे ? हमारी जितनी शक्ति है उसके अनुसार, जितनी सुगमता से हम सेवा कर सकें, उतनी सेवा कर दें। ऐसा नहीं कि सब कुछ आप लगा दो। जितनी सुगमता से सेवा कर सको, उतना कर दो। नियत बना लो कि ससार का है यह शरीर। हमारे पास अपनी कहलाने वाली जो वस्तु है वह संसार की है।

नियत करने से क्या होगा—कहते हैं ? नियत करने से मुक्ति हो ज येगी। कल्याण हो जायेगा। उद्धार हो जायेगा। केवल नियत बना लें कि हमारे पास जो है वह संसार की सेवा मे लगाना है। शरीर और संसार एक हैं तो शरीर को भी ससार की सेवा मे लगाना है। शरीर को भोगों में, आराम में स्वाद में, शौकीनी में नहीं, सेवा में लगाना है। निर्वाह हो जाये उतना शरीर को भी दे दो। इसके साथ बैर थोडे ही है हमारा ! इसको भी खाने पहनने, ओढ़ने, रहने को दे दो। इतनी—वस्तु इसे भी दे दो जिससे इसका निर्वाह हो जाय। इसमे कोई अभाव हो तो इसको भी निर्वाह की वस्तु देते रहो। हमारे पास जो कुछ है, वह देने को है क्योंकि सम्पूर्ण वस्तुएं ससार की ही हैं। ऐसी नियत से कल्याण हो जायेगा। इसका क्या पता ? आप सबको पता है इसका। इस बात का आप सबको अनुभव है। कैसे ? जो वस्तु आपकी नहीं है, उसकी आपको चिन्ता होती है क्या ? संसार मे रूपये बहुत हैं। अरवों-खरबो रूपये पडे हैं। उन रूपयो मे उथल पुथल हो जाये तो आपके हलचल मचती है क्या ? आपवालो में हो जाये तो ? तो यह बन्धन हुआ, अपना मानने से ! अपना न मानने से बंधन नहीं हुआ ! आपके जो व्यक्ति है उनमे से कोई मर जाय तो दुःख होता है। ससार मे तो पशु पक्षी मरते ही रहते हैं; मनुष्य भी मरते ही रहते हैं, और सुन भी लेते हैं तो क्या हलचल होती है ? तो, जो हमारे नहीं हैं उनसे हम बधे हुए नहीं हैं। जिन्हे हमारे मानते हैं, उनसे ही हम बधे हुए हैं। तो, ज्यादा से तो हमारी मुक्ति होई हुई है ही जमीन संसार मे बहुत है, उस जमीन से हम बधे हुए नहीं हैं। हमारा केवल

एक-दो खेत है, उसमे हम बंधे हुए हैं। हमारा मकान है, उसकी हमें चिन्ता है, जबकि ससार मे अण गि त मकान पडे हैं। वे बन-बिगड़ जायें तो भी कोई परवाह नहीं। उनसे हम मुक्त हैं। ससार की जमीन से, रुपयों से हम मुक्त हैं। संसार के कुटुम्बियों, पशु-पक्षियों, सम्बन्धियों से, हम मुक्त हैं। यानी हमारे जो नही है, उनसे हम मुक्त हैं। इस वास्ते हमारे पास जो है वह भी हम उनका ही मान लें। उनकी सेवा करने के लिये हमे दिया गया है, कब्जा करने के लिये नही। तो ऐसा मानकर हम मुक्त हो जायें।

जैसे हम यहां बैठे हैं। बिछाने के लिए यह कम्बल दिया है तो ये बैठने के लिये दिया है, कब्जा करने के लिए नहीं। ऐसा माने तो हम मुक्त है इससे। और ये तो हमारो ही है, हमारे लिये ही है, तो फंस जायंगे। फिर कोई लेगा तो यह कैसे लेता है? उसके बनने बिगड़ने का असर होगा। रक्षा लिये हम कह सकते हैं कि भाई! नष्ट क्यों करता है? कोई भी चीज खराब क्यों करता है? काम मे ले लो! उसकी हम रक्षा कर सकते हैं। पर रक्षा करते हुए भो हम बधेंगे नहीं। अपना मान लेंगे और अपने लिये मान लेंगे तो बध जायंगे। इस वास्ते ससार का जितना अंश हमारे पास है वह अपना नहीं है और अपने लिए भो नहीं है, ऐसा मान लें। ये ससार की है और ससार के लिये है। संसार का जितना अंश हमारे पास है उसको भी सेवा मे लगा दो तो क्या हर्ज है! स्वाद शौकोनी करते हो, राजी होते हो भोगों में, सुख ले लें तो यहां फंसते हो, खतरा यह है। ऐसा न रखने से व्यवहार मे कोई बाधा नहीं आयेगो। घर वाले भी राजी होंगे। सेवा घर वालों की करेंगे और उनसे सेवा नहीं चाहोगे तो क्या वे नाराज होंगे? घर वाले, बाहर वाले सब राजी हो जायेंगे। आप मुक्त हो जाओगे। अपना और अपने लिये मानोगे तो फंस जाओगे। बंध जाओगे। ये दीखने वाली वस्तु दीखने वाले के लिए है। और न दीखने वाला स्वयं न दीखने वाले परमात्मा का है। बस, हम परमात्मा के और परमात्मा हमारे। शरीर ससार का और संसार शरीर का। परन्तु

ये लेने के लिए नहीं किन्तु देने के लिए है। हम परमात्मा के, परमात्मा हमारे। तो, अपने आपको परमात्मा को सौंप दें। भगवान् ने सबसे गोपनीय कहा है "मामेकं शरण व्रज" (गीता १८।६६) केवल मेरा आश्रय ले लो। और सब आश्रय छोड़ दो। सब धर्मों को छोड़ कर मेरा आश्रय ले लो। "और आसरो छोड़ि, आसरो लीनो कुंवर कन्हाई को" फिर "सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि"। (गीता १८।६६) सब पापो से मुक्त मैं कर दूंगा। चिन्ता की बात ही नही।

ये दो बातें प्रत्यक्ष हैं कि दीखने मे आने वाला और देखने वाला। संसार दीखने मे आने वाला है और देखने वाला परमात्मा है। हमने सनातनियो, जैनियो आदि सबसे सुना है कि भाई भगवान् जाने! जानने वाला वह ही है। वह परमात्मा है। वह हमारा है। वह 'है' और ये 'नहीं है'। ये बदल रहा है, वह नहीं बदलता है। परमात्मा वही है और ससार बदल रहा है। अनादिकाल से वह 'है', एवं ज्यों का त्यो ही रहेगा। उसका आश्रय लो तो निहाल हो जाओगे। इनका आश्रय लो तो रोना पड़ेगा भाई। जिन-जिन का आश्रय लिया, वह चले गये तो रोना पड़ा ही। तो, आपका हमारा सबका अनुभव है। शरीर और सामग्री सब संसार के लिये है। हम तो है। 'नहीं है', वह हमारी नहीं है। परमात्मा सब जगह है। वह हमारा है हरदम जो ये दीखता है, ये हमारा नही है। ये संसार बदलता है, ये हमारा नहीं है। इसकी तो सेवा करना है और परमात्मा को अपना मानना है।

राम राम राम

—:०:—

(३) भगवान् के लिए प्रेरणा "चेतावनी"

जैसे कोई आदमी जंगल मे चला जाय जहां कोई अपना है नहीं। वहाँ सुर्यास्त हो रहा है, जोर से आंधी आ रही है, वर्षा उमड़ रही है, मार्ग का पता नहीं; उस समय उसको क्या दशा होती है ? ऐसे ही आप और हम विचार करें। जो भाई भूले हुए हैं अपने आपको, उनका कौन है ? यहां स्वय ठण्डे हृदय से सोचें। आज अगर हमारे प्राण जाते हैं तो कौन ऐसा है सहायता करने वाला, जो नहीं मरने देगा ? कौन ऐसा साथी है जो साथ चलेगा ? कौन-सी वस्तु हमारे साथ रहेगी ? कौन-सा घर, कौन-सी जमीन, कौन से रूपये, जो हमारे काम आवेंगे। शरीर भी यहीं पड़ा रह जायेगा। यह भी काम आने वाला नहीं है। ये बुद्धिमानी क्या काम आयेगी ? क्या हमारी विद्या काम आवेगी ? हमारी चतुराई, बुद्धिमानी, समझदारी ये कुछ काम आवेगी क्या ? कुछ भी काम नहीं आवेगी तो किसके भरोसे बैठे हो, सोचो जरा। विशेषतः ये स्वयं के विचारने की बात है। दूसरे का सहारा लेने की, किसी के भरोसे की बात नहीं है। खुद को काम करना है। और वह करना ही पडेगा। इसका और कोई (दूजा) उपाय कर नहीं सकता। स्वयं ही उपाय कर सकता है। स्वयं के हाथ मे इसका उपाय बड़ा भारी है। और वह अचूक उपाय है। ये जो ससार हमें दीखता है, शरीर सहित-ये हरदम जा रहा है। इसका सहारा, आश्रय, भरोसा है—ये ही खतरनाक चीज है। शास्त्र कहते है सन्त महात्मा कहते है कि जो दीखता नहीं है, वह सब जगह परिपूर्ण है, वह हमारा है। वह कभी जाता नहीं। उसका कभी वियोग हुआ नहीं, था नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं, होना सम्भव ही नही हम उनसे अलग हो जायें, हमारे से वह अलग हो जायें या हमारे साथ नही रहे। यह होना सम्भव ही नहीं है। इस वास्ते हम उसको अपना मान लें। उसीको पुकारें। वह तैयार है। केवल नष्ट होने वाली चीजों (संसार) के भरोसे उस अविनाशी को भूले बैठे हैं जबकि वह हमारा है और ये संसार हमारा नहीं है। भगवान् कहते है

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनःषष्ठानी - इन्द्रियाणी प्रकृतिस्थानो कर्षतो"। (गीता १५।७) ये शरीर इन्द्रियों, मन, बुद्धि आदि सबके सब प्रकृति मे स्थित रहने वाले हैं। प्रकृति के ही अश हैं। हम परमात्मा के अश हैं। परमात्मा हमारे साथ रहने वाले हैं। हम परमात्मा के साथ रहने वाले है।

कहते हैं कि उसको हम जानते नहीं। कोई परवाह नहीं। कोई परवाह नहीं, आप नहीं जानते। परन्तु वह तो जानते हैं ये बात तो पक्की है। कुछ भी वस्तु होती है तो मिल्कियत होती है। कोई उसका मालिक होता है। ये ससार और हम सब, ये किसी की मिल्कियत है। यानि हमारा कोई मालिक होना चाहिए? सबका मालिक परमात्मा है।

उस (मालिक) के रहते हुये भी फिर हम उसे क्यों भूल गये? 'शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः' (गीता १५।८)। क्योंकि हम ईश्वर बन गये शरीर के। कुटुम्ब, घर, जमीन के मालिक बन गये। बिल्कुल धोखे मे आकर बन गये हैं। वास्तव मे मालिक है नहीं। क्योंकि किसी को भी न तो मन मुताबिक रख सकते हैं एवं न बना ही सकते हैं? ये सामर्थ्य किंचितमात्र भी नहीं है। कोरा वहम पड गया कि हम मालिक हैं। रुपये चले जाते हैं, बेटा मर जाता है, रोग हो जाता है, अपमान हो जाता है, निन्दा हो जाती है, कोई हाथ को बात नहीं क्योंकि जगह नीचा देखना पड़ता है, जगह ये हाथ की बात नहीं। फिर भी इन्हीं को लेकर हम अपने आपको मालिक मानते हैं, कितनी बड़ी भारी गलती है? ज्योंही हम इनको लेकर मालिक मानें अपने आपको, त्यो ही अपने मालिक को भूल गये। अगर हम इनके मालिक न बने तो, प्रभु से वियोग न होगा, हम उसे भूलेंगे नहीं, विमुख नहीं हो सकते! वियोग तो होता ही नहीं, विमुख हो जाते हैं। कब हो जाते हैं? कि जब हम इनके मालिक हो जाते हैं। छोटा बालक जब किसी वस्तु को नही अपनाता है, मालिक नहीं बनता है तब तक माँ मे स्नेह होता है। वह स्नेह व्याह होने पर नही रहता क्योंकि वह कुछ चीजो को अपनी मानने लग जाता है तो माँ को भूल

जाता है। फिर वह स्नेह नहीं रहता ! वह पहले माँ के बिना रह नहीं सकता था, रोने लग जाता था चैन नहीं पड़ती थी। अब उसको माँ सुहाती नहीं। जब घर का मालिक हो जाता है, स्त्री आ गई, लड़के-लड़की हो गये, कमता है; ऐसी स्थिति मे स्त्री के कहने से माँ से लड़ता है। मां सुहाती नहीं। क्या हुआ ? मालिक बन गया। ऐसे ही संसार के मालिक बन गये तो 'शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः। गृहीत्वैतानी संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्। (गीता १५।८) शरीर छोड़कर जाते समय इनको (मन सहित इन्द्रियों को) लेकर जाता है, वैसे ही जैसे बिल्ली अपने बच्चे को लेकर इधर-उधर जाती है। ऐसा कर लू। वैसा कर लूं। विचारता है परन्तु यह नहीं विचारता कि अरे तू खुद मरने वाला है, आज या कल।

"आपां बानां करां औरां री, आपारी करसी कोई और" ये दशा होगी, फिर भी इधर ख्याल ही नहीं करते। बड़े आश्चर्य की बात है। बड़े दुःख की बात है। आश्चय इस बात का है कि बुद्धिमान् कहलाते हैं, बड़े समझदार कहलाते हैं; समाज मे भी मुखिया हो जाते हैं, घर में भी पचायत करते हैं औरों की भी व्यवस्था करने की हिम्मत रखते है, वह बुद्धिमानी कहाँ चली गई ? दशा क्या होगी ? इस तरफ विचार नहीं करते। वह पचायत वह बुद्धिमानी क्या काम आयेगी ? ये योग्यता, ये सम्पति, ये नामगीरी क्या काम आयेगी ? बड़ाई कुछ भी काम देगी क्या ? किंचिमात्र भी काम देगी क्या ? बुद्धिमान कहलाते हैं और अपनी दशा पर विचार नहीं करते तो बड़ा भारी आश्चर्य है। और दुःख इस बात का है कि दशा क्या होगी कोई साथ नहीं देगा। शरीर भी साथ नहीं देगा। यह लाश भी यहीं पड़ी रह जायेगी। न जाने कहाँ जाना होगा, कुछ ठिकाना नहीं। आदमी पैर उठाता है तो अगाडी रखने की जगह समझकर उठाता है। तो यहां से पैर उठाना तो पड़ेगा पर पैर रखेंगे कहाँ इसका है पता ? जाना पडेगा क्योकि यह मृत्युलोक है। इसमे वे ही रहते हैं जो सब मरने वाले हैं। कोई भी रहने वाला यहां नहीं है। फिर आप और हम अकेले ही कैसे रह जायेंगे ? जाना पडेगा। फिर भी निश्चिन्त बैठे हैं। ऐसे निश्चिन्त बैठे हैं जैसे कि काम पूरा

कर लिया। पूरा ठेका ले लिया कि हम तो यहीं रहने वाले हैं। जाने वाले हैं ही नहीं। ज़रा सोचो। आज प्राण चले जायं तो कौन साथ जायेगा? हमारी ताकत नहीं है कि हम सांस को ले ही लेंगे। हम दो, चार, दस दिन जी ही जायेंगे। क्या ऐसा बल है हमारे पास में? दो ही बातें हैं (१) चाहे तो जाने की तैयारी कर लो। अभी मर जायें कोई चिन्ता नहीं। हमारे लिए कोई काम बाकी नहीं। "रज्जब धोखा को नहीं' फल दे सूखा खेत।" हमारा काम बन गया। चाहे तो ये कर लो। औरा (२) चाहे तो मरेंगे ही नहीं। जब तक हम नहीं चाहेगे, हम मरेंगे नहीं। जाने की तैयारी नहीं और मरने का डर नहीं। यहां से मरना चाहते नही हैं। और तीसरा कोई रास्ता नहीं है। है तो बताइये? रह सकते नहीं और जाने की इच्छा नहीं। इस वास्ते इन दो में से एक तो बिलकुल ही कर लेनी चाहिए क्योंकि तीसरा कोई मार्ग नहीं है। ऐसी अवस्था में भी निश्चिन्त बैठे हैं। ये खुद के सोचने की बात है। दूसरे से सलाह लेने की जरूरत नही है इसमे। सलाह लो, तो 'हम क्या करें' ये शास्त्रो से लो; सन्तमहात्माओं से, अपने से जो बडे-बूढे जानकार हों, उनसे लो। परन्तु सहारा किसका है? किसी का भी सहारा नहीं है। सभी जाने वाले हैं। जिसका भरोसा लिया वह भी जानेवाला है। धन, सम्पति, वैभव कुटुम्बी जितने भी हैं इसमें किसका भरोसा करें? सभी जानेवाले हैं।

"काठ की ओट से काठ बचे नहीं आग लगे तब दोऊ कूं जारे"। आग लग गई। सामान कहां रखें? बाड़ के पास रख दो तो वह बाड़ रहने वाली है क्या? वह खुद जल जायेगी तो उसे क्या बचा पायेगी?

स्याल को ओट से स्याल बचे नहीं सिंह पडे तब दोनों कूं फारे
मूसा को ओट से मूसा बचे नहीं, बिल्लीं पड़े तब दोऊं कूं मारे
आन की ओट से जीव बचें नहीं रज्जब वेद पुरान पुकारे

सब जाने वाले हैं। कोई बचने वाला नहीं है। सब नष्ट होने वाले हैं। किसका भरोसा करें? जो रहने वाला है, उसका भरोसा लेते नहीं। उसका सहारा लिया ही नहीं। इनका सहारा लिया है जो बिल्कुल कच्चा सहारा है। इस वास्ते आज से, अभी से ही चेत कर लेना चाहिए।

एक कहानी आती है। एक घोडे पर चढा हुआ आदमी जा रहा था। दोपहर के समय प्यास लगी। गांव में पहुँचा। एक पीपल के नीचे घोड़े को बांध दिया। पास में मन्दिर था। कथा हो रही थी। उसमें चला गया। जल पीया। वहां ऐसी बात चली कि तेरा साथी कौन है, किसके भरोसे तू भटक रहा है ? किसके भरोसे बैठा है ? किस के भरोसे निश्चिन्त है ? तेरा है कौन साथी ? ऐसी बातें सुनी। फिर सुना कि सिवाय उस परमात्मा के तेरा कोई साथी नहीं है। इस वास्ते—

"नारायण ब्रजराज कुंअर सुं बेगी कर पहिचान।"

उससे पहिचान कर। सिवाय उनके कोई रहने वाला नहीं। कोई हमारा नहीं हैं, अतः अभी से उसकी शरण लेनी चाहिये। किसी के भरोसे रहना नहीं चाहिए। ऐसी बातें सुनी तो बैठ गया। कथा उठी तो उठ कर चला गया। एकदम अकेला ही। घोड़ा कहां खोला, कहां है, पता ही नहीं। चल दिया। जो मिला वह खा लिया। रात-दिन भगवान् के नाम जप में लग गया। केवल उसी को पुकारे। घूमते घूमते कुछ महीने-वर्षों के बाद वहाँ ही वापस आया तो सत्संग मे बैठ गया। लोग बैठे हैं, खडे हैं, सत्संग सुन रहे हैं। फिर सत्संग उठा और वे चले तो सबको दण्डवत् किया, चरण छुए, नमस्कार किया और कहा कि आप बड़े शूरवीर हो। बड़े भारी शूरवीर हो। एक दिन मेरे बात लगी तो अभी तक मेरा माथा ठिकाने नहीं आया। आप रोजाना सुनते हो ? बडे शूरवीर हो। इतने मजबूत हो।

अपने अब सोचो कि कब वह दिन होगा जब हमे चेत होगा। बातें अच्छी भी हैं और बहुत अच्छी हैं। क्या फायदा उनसे जबकि हमारी दशा वही है। कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। वह ही राग, वह ही द्वेष, ईर्ष्या, वहीं लोभ, शोक-चिन्ता, वह ही भय उद्वेग, वह ही हलचल। क्या किया हमने ? अभी तक चेत नहीं हुआ। वह चेत कब होगा ? उसके लिये क्या विचार किया ? किसका भरोसा कर रहे हैं ? बच्चे होते हैं, सोचते हैं कि हम बड़े होंगे तब करेंगे। तो हम कब बडे होंगे ?

कब सोचेंगे ये बातें ? ये बात आज सोचने की है। अभी, अभी, अभी भागने से कुछ होगा नहीं। छोड़ कर चलने से भी कुछ होगा नहीं। सच्चे हृदय से भगवान् मे लग जाओ। सारे काम करो तो भगवान् के ही करो। भगवान् मे ही लगो। भरोसा इनका मत रखो। इनका भरोसा है, ये ही बाधा है। बाधा ये ही है कि जो नाशवान् है उसका भरोसा रखते हैं मन मे। इस वास्ते उसके सम्मुख हो जाओ ! केवल भगवान् के सम्मुख हो जाओ, जहां हो वहां से ही ! भगवान् वहाँ ही तैयार है। केवल उनकी तरफ ही मुँह कर लो। हमारे वे हैं, हम उनके हैं। यह ससार हमारा नहीं। इसकी तो सेवा कर दो। जो कुछ पास में है वह दे दो। सेवा कर दो।

राम नाम के मोल से, खबरदार नर होय।
चला जाय बैकुण्ठ मे, पल्ला पकड़े कोय॥

—:०:—

(४) अनुभव का आदर—२

हमारे तो बहुत बार एक बात मन में आती है कि मनुष्य अपने अनुभव का आदर करे तो उसका कल्याण हो जाय। अपने जो अनुभव में बात आ रही है न, उस पर यह टिक जाय दृढ़ता से तो इसका कल्याण हो जाय। कैसे? यह प्रत्यक्ष बात है कि संसार जो दिखता है, वह हरदम बदलता है। इसके केवल बदलने पर दृष्टि रहे तो निहाल हो जाय। बदलने पर दृष्टि न होकर के, दृष्टि स्थायी पर है कि, ये हैं। 'ससार है' ऐसा भाव रहता है। यह विपरीत धारणा है। अपने अनुभव से विपरीत है। आज से पच्चीस, तीस, पचास वर्ष पहले के भाई जो बड़ी अवस्था वाले हैं, अपना अनुभव करें, कि पहले उस समय मे क्या हमारा शरीर ऐसा था? और तीस-चालीस वर्ष जी जायेंगे तो क्या ऐसा रहेगा? और नहीं जीयेंगे तो क्या ऐसा रहेगा? यह बिलकुल सबका अनुभव है कि पहले ऐसा नहीं था और फिर ऐसा नहीं रहेगा। तो ये बदला है और बदलता है और बदलेगा। इसमे कोई सन्देह नहीं है। और यह बदलना किसी एक वर्ष में होता है क्या? साठ वर्ष की अवस्था हुई। साठ वर्षों में उनसठ वर्ष में न बदल कर साठवें वर्ष में बदला हैं क्या, ये सब? ऐसा माना नहीं जा सकता। प्रत्येक वर्ष मे बदला है, ये मानना ही पडेगा। और प्रत्येक वर्ष में बदलता है, वह प्रत्येक महीने में बदलता है ऐसा ही मानना पड़ेगा। ऐसा थोड़े ही है कि ग्यारह महीनों मे न बदलकर बारहवें महीने मे बदल गया हो, ऐसे ही प्रत्येक महीने मे बदलता है? उसके लिये ये बात माननी पडेगी कि प्रत्येक दिन मे बदलता है। उनतीस दिन मे नहीं बदलता तीसवें दिन मे बदल गया हो, ऐसा तो नहीं कह सकते? और प्रत्येक दिन में बदलता है, वह प्रत्येक घंटा में बदलता है। ऐसा नहीं कि २३ घंटों में न बदला, २४ वें घंटे में बदल गया, ऐसा नहीं कह सकते। प्रत्येक घंटा में बदलता है वह प्रत्येक मिनट में बदलता है, ऐसा मानना पड़ेगा। नहीं तो घण्टा में कैसे बदलेगा? ऐसे प्रत्येक मिनट में बदलता है वह

धन कम होता है। परन्तु यह बिलकुल गलती की बात है। निर्धन के १००-२०० ५०० की भूख होती है। और लखपती के भूख कितनी होती है कि हजारों की। करोड़पती के लाखों की भूख होती है। जिसके पास धन ज्यादा है, उसको ही धन की भूख ज्यादा है। इस बात पर जरा गहरा विचार करो। बिलकुल सच्ची बात है। सौ रूपये भी एक साथ मे जिसने इकट्ठे नहीं किए हैं, उसको सौ रुपये मिल जाय तो बहुत मिल गया! लखपती को सौ रूपये मिलें तो क्या है? १००-५००-१००० भी कुछ नहीं। इस दृष्टि से निर्धन के पास बड़ी भारी पूंजी है। तो भूखा कौन है? जो धनी है, वह ही ज्यादा भूखा है, वह ही महान् दरिद्री है। यह बात नई दीखती है। पर यह बात बिलकुल सच्ची है।

जैसे धन वाले के धन का अभाव है, वैसे ही पढ़े हुए के पढ़ाई का अभाव है। उसके और पढ़ना बाकी पड़ा है। अपने बालकपन की एक बात सुनाऊं आपको। मैंने जब वर्णमाला सीखी, अक्षरों का ज्ञान प्राप्त किया। क, ख, ग अक्षर पढ़े, अक्षर पढ़ने के बाद पुस्तकें देखीं। मेरे सामने संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकें थीं। (अगर उर्दू या अंग्रेजी की पुस्तकें होती तो मैं सोचता कि मैं पढ़ा लिखा नहीं हूं।) तो, उन पुस्तकों को पढ़ा तो मैंने समझा कि पढ़ाई बाकी नहीं रही। जिस पुस्तक मे देखो अक्षर तो ये हैं। ये अक्षर मैं जानता हूं सभी! हमारे लिए पढ़ाई बाकी नहीं रही। एक बात की कठिनता हमारे लिए थी कि मिला कर अक्षर लिख देते हैं न, वे ठीक से नहीं पढ़ पाता! इसको ठीक पढ़ना आता ही नहीं। अलग-अलग लिख दें, तो ठीक रहता है। और पढ़ाई सब हो ही गई। पढ़ाई बाकी ही नहीं रही। अब मेरे से पूछे तो, कई बार जन्म लेकर, जन्म से अन्त तक पढ़ता रहे तो पढ़ाई का अन्त नहीं होता, इतनी पढाई बाकी पड़ी है। एक संस्कृत की पढ़ाई लें तो संस्कृत मे इतने विचित्र ग्रन्थ हैं कि उम्र भर खत्म कर दो तो भी पढ़ाई पूरी नहीं होती। इतनी पढ़ाई बाकी है। तो पढ़ाई बाकी किसके है, जो ज्यादा पढ गया उसके। थोड़ा पढ़ा उसके लिए पढ़ाई बाकी है ही नहीं। क्योंकि उसकी पढ़ाई तो पूरी हो गई, अक्षर कोई नया नहीं दीखता। सब पढ़ा हुआ है समझता। इससे क्या सिद्ध हुआ?

संसार की वस्तु, ज्योंही वह लेगा त्यों ही उसकी दरिद्रता बढ़ेगी, बढेगी, बढ़ेगी। वहम तो पड़ा है कि दरिद्रता मिट जायेगी। किन्तु दरिद्रता बढेगी। दरिद्रता क्यों बढ़ेगी क्योंकि दरिद्रता ही तो है। नष्ट हो नष्ट हो रहा है, सब। उसको सग्रह करके तू कैसे निहाल हो जायेगा ?

एक बात और जंची हुई है। अभी नहीं है, वह चीज ले लें तो हम बड़ेआदमी हो जायेंगे। जैसे हमारे आज मान बड़ाई नहीं है, वह मान बड़ाई हो जाय तो निहाल हो जायेंगे। आज पद नहीं है, वह पद मिल जाय तो निहाल हो जायेंगे। अब मिनिस्टर बन जायें तो निहाल हो जायेंगे। यानी अभी जो नहीं है, उसको प्राप्त करके बडे हो जायेंगे। पर यह बिलकुल गलती की बात है। "नहीं है" उसको प्राप्त करके अन्त में तो 'नहीं ही' रहेगा। क्योंकि पहले मूल मे भी 'नहीं ही' है। वह 'है', कैसे रहेगा ? वह विद्या रहेगी क्या ? मान बड़ाई रहेगी क्या ? धन रहेगा क्या ? पद रहेगा क्या वह ? जो मूल में ही नहीं है, वह अन्त में भी नहीं ही होगा। इससे तुम बडे कैसे हो जाओगे ? विद्या नहीं है। हम पढ़ जायेंगे तो बड़े हो जायेंगे। तो विद्या जो "नहीं है" अभी उसको ले लिया हमने। उससे बड़े कैसे हो जायेंगे ? नहीं को लेकर बड़े नहीं बन सकते।

बड़ा कौन है ? शूरवीर कौन है ? श्रेष्ठ कौन है ? जो "है", सदा नित्य निरन्तर है, उसको प्राप्त कर ले, वह बड़ा है क्योंकि "है" उसकी प्राप्ति होने पर उसका अभाव होता ही नहीं। "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।" सत् का अभाव नहीं होता। सत् है, तो अभाव कभी नहीं होता। अभी अभाव नहीं है। पहले अभाव नहीं था। उस भाव रूप की प्राप्ति कर ले। अभाव से विमुख हो जाय, उसी की शूरवीरता है। उसके घाटा पड़ेगा नहीं कभी। 'नाभावो विद्यते सतः' सत् का अभाव होता नहीं कभी। तो सदा रहने वाली चीज को प्राप्त कर लें। वह ही बड़प्पन की बात है। परन्तु मानता है, ये "नहीं है" वह मिल जाय तो मैं बड़ा हो जाऊं, इस वास्ते इस तरफ ख्याल करें। तो "है उस चीज को प्राप्त करना है। "है" प्राप्त करने मे क्या कठिनाई है ? "है" को प्राप्त

प्रत्येक सेकंड में बदलता है। प्रत्येक सैकंड में बदलता है वह प्रत्येक क्षण में बदलता है। क्षण इससे (सैकंड से) भी बहुत सूक्ष्म परमाणु काल बताया। ऐसे परमाणु काल में भी यह स्थिर नहीं रहता। हरदम बदलता है। ये सब क्या है कि बदलने ही बदलने का पुंज है और कुछ नहीं है। जैसे पंखा चलता हुआ गोल-गोल चक्कर दिखाता है, गोल-गोल नहीं है, तेजी से घूमने से गोल चक्कर दिखता है; है तो ताड़ियां, अलग-अगल ही। ऐसे ही इतनी सूक्ष्मता से यह बदलता है कि इसके बदलने का पता नहीं लगता। समय पाकर पता लगता है कि पहले से ये बदल गया। तो हरदम बदलता है। इसमे स्थिरता कहां है ?

मनुष्य संग्रह की और सुख भोग की दो इच्छाएं रखता है। मेरे पास संग्रह हो जाय और सुख भोग लूं। ये संग्रह और सुख भोग में बिना थिर-बुद्धि हुए आकर्षण हो ही नहीं सकता। ये ही खास अनर्थ की मूल है। मनुष्य मात्र, अगर देखा जाय, तो इसमें ही भूला हुआ है। मेरे पास संग्रह अधिक हो जाय तो मैं धनी बन जाऊं और सुख भोग लूं। अब, सुख भोगेगा तो थिर रहेगा तब भोगेगा न ! सम्पति व सुख थिर रहेगा तब न काम करेगा। थिरता तो है नहीं एक क्षण भी, सैकंड की भी, और सुख भोगना और संग्रह करना चाहता है। संग्रह और सुख में आसक्ति होने से ही उस पारमार्थिक सुख से यह वंचित रहता है। साफ लिखा है गीता ने कि—

"भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम् ।
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौ न विधीयते ॥" (गीता २।४४)।

भोग और ऐश्वर्य मे जो आसक्त है, इसमे जिनको प्रियता है वह परमात्मा की प्राप्ति के लिये निश्चय भी नही कर सकता। 'मेरे को मेरा कल्याण करना है' ये उसको होश ही नहीं रहता। ये ख्याल ही नहीं रहता कि तू कितने दिन काम चलायेगा, इससे ? इस धन, भोग और परिवार के आश्रित होकर कितने दिन काम चलायेगा ? 'आज तक कोई नहीं रहा तो तू कैसे रहेगा' -ऐसा होश ही नहीं होता ! एक आध्यात्मिक निर्णय कर ही नहीं सकता कि मेरे को अपना कल्याण करना है। अपने कल्याण

का निश्चय कर ही नहीं सकता। तो केवल अपने अनुभव को तरफ विचार करे कि भाई निश्चिन्त कैसे बैठे हो ? ये तो जा रहा है बड़ी तेजी से। आप सोवें, बैठें, काम करें, न करें, तो भी समय जाता है। भजन करें तो भी समय जाता है। भजन करें तो, न करें तो, समय तो अपनी धुन में जाता है। वह जा ही रहा है। समय क्या जा रहा हैं, मौत नजदीक आ रही है। शरीर जा रहा है। खट से वह हो "रामनाम सत् आ जायेगी।" कोई नहीं टिक सकेगा। संसार सब दीखता है, वह सबका सब तेजी से बदलने वाला है। अब किसके भरोसे निश्चिन्त बैठा है ? और मरने का पता नहीं, कभी भी मर जायें। एक क्षण में मर जाता है आदमी। हार्ट फेल हो गया। ऐसे ही हार्ट आपके और हमारे हैं, और कोई नये तो हैं नहीं। फौलाद के बने हुए नहीं हैं। ऐसा होने वाला है। फिर भी इसमें बैठा है निश्चिंत। बडे भारी आश्चर्य की बात है।

तो ऐसा जो संसार जा रहा है, उसमें एक परमात्मा तत्व है, जो सर्वत्र परिपूर्ण है। ये 'नहीं' (संसार) का अनुभव होता है वह है (परमात्मा) से होता है। 'नहीं' का अनुभव 'नहीं' के द्वारा नहीं होता। जैसे यहां से दस आदमी निकल गये तो दसों को गणना करने वाला वह आदमी यहां है, तब कहता है कि दस आदमी निकल गये। तो चलने वालों का ज्ञान, न चलने वालों को होता है। तो आप भीतर में रहने वाले वही हो। प्रत्यक्ष कहते हो कि मैं बालकपन में ऐसा था, अब ऐसा हूं। आप वैसे ही हो। आप सत् हो। आप हो। आपका अस्तित्व है। वह तो आपका है। इसका (संसार का) अस्तित्व नहीं है। अब अस्तित्व 'है' माना है वह वास्तव मे नहीं है; "नहीं हैं" उसके आश्रित कितना दिन काटेगा, बताओ जरा ? "नहीं है" उसको लेकर के "है" उसको भूख कैसे मिटा लोगे ? "नहीं" के पकड़ने से ही भूख पैदा होती है। हमारे जो कमी आती है, कमी दीखती है वह कमी कहां से शुरु हुई है ? जबसे "नहीं" को पकड़ा है तभी से कमी शुरु हुई है। आपको प्रत्यक्ष अनुभव की बात बतावें। सबके अनुभव की बात है। कोई ख्याल करे, या न करे, यह बात अलग है। निर्धन के पास धन कम होता है कि धनी आदमी के धन कम होता है ? स्थूल दृष्टि से कहेंगे तो कहेंगे कि निर्धन के पास

धन कम होता है। परन्तु यह बिलकुल गलती की बात है। निर्धन के १००-२०० ५०० की भूख होती है। और लखपती के भूख कितनी होती है कि हजारों की। करोड़पती के लाखों की भूख होती है। जिसके पास धन ज्यादा है, उसको ही धन की भूख ज्यादा है। इस बात पर जरा गहरा विचार करो। बिलकुल सच्ची बात है। सौ रूपये भी एक साथ में जिसने इकट्ठे नहीं किए हैं, उसको सौ रुपये मिल जाय तो बहुत मिल गया! लखपती को सौ रूपये मिलें तो क्या है? १००-५००-१००० भी कुछ नहीं। इस दृष्टि से निर्धन के पास बड़ी भारी पूंजी है। तो भूखा कौन है? जो धनी है, वह ही ज्यादा भूखा है, वह ही महान् दरिद्री है। यह बात नई दीखती है। पर यह बात बिलकुल सच्ची है।

जैसे धन वाले के धन का अभाव है, वैसे ही पढ़े हुए के पढ़ाई का अभाव है। उसके और पढ़ना बाकी पड़ा है। अपने बालकपन की एक बात सुनाऊं आपको। मैंने जब वर्णमाला सीखी, अक्षरों का ज्ञान प्राप्त किया। क, ख, ग अक्षर पढे, अक्षर पढ़ने के बाद पुस्तकें देखीं। मेरे सामने संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकें थीं। (अगर उर्दू या अंग्रेजी की पुस्तकें होती तो मैं सोचता कि मैं पढा लिखा नहीं हूं।) तो, उन पुस्तकों को पढ़ा तो मैंने समझा कि पढ़ाई बाकी नहीं रही। जिस पुस्तक मे देखो अक्षर तो ये हैं। ये अक्षर मैं जानता हूं सभी! हमारे लिए पढ़ाई बाकी नहीं रही। एक बात की कठिनता हमारे लिए थी कि मिला कर अक्षर लिख देते हैं न, वे ठीक से नहीं पढ़ पाता! इसको ठीक पढ़ना आता ही नहीं। अलग-अलग लिख दें, तो ठीक रहता है। और पढ़ाई सब हो ही गई। पढ़ाई बाकी ही नहीं रही। अब मेरे से पूछे तो, कई बार जन्म लेकर, जन्म से अन्त तक पढ़ता रहे तो पढ़ाई का अन्त नहीं होता, इतनी पढ़ाई बाकी पड़ी है। एक संस्कृत की पढ़ाई लें तो संस्कृत मे इतने विचित्र ग्रन्थ हैं कि उम्र भर खत्म कर दो तो भी पढ़ाई पूरी नहीं होती। इतनी पढ़ाई बाकी है। तो पढ़ाई बाकी किसके है, जो ज्यादा पढ गया उसके। थोड़ा पढ़ा उसके लिए पढ़ाई बाकी है ही नहीं। क्योंकि उसकी पढ़ाई तो पूरी हो गई, अक्षर कोई नया नहीं दीखता। सब पढ़ा हुआ है उसका। इससे क्या सिद्ध हुआ?

संसार की वस्तु, ज्योंही वह लेगा त्यों ही उसकी दरिद्रता बढ़ेगी, बढ़ेगी, बढेगी। वहम तो पड़ा है कि दरिद्रता मिट जायेगी। किन्तु दरिद्रता बढेगी। दरिद्रता क्यों बढ़ेगी क्योंकि दरिद्रता ही तो है। नष्ट ही नष्ट हो रहा है, सब। उसको सग्रह करके तू कैसे निहाल हो जायेगा ?

एक बात और जंची हुई है! अभी नहीं है, वह चीज ले लें तो हम बडेआदमी हो जायेंगे। जैसे हमारे आज मान बड़ाई नहीं है, वह मान बड़ाई हो जाय तो निहाल हो जायेंगे। आज पद नहीं है, वह पद मिल जाय तो निहाल हो जायेंगे। अब मिनिस्टर बन जायें तो निहाल हो जायेंगे। यानी अभी जो नहीं है, उसको प्राप्त करके बड़े हो जायेंगे। पर यह बिलकुल गलती की बात है। "नहीं है" उसको प्राप्त करके अन्त मे तो 'नहीं ही' रहेगा। क्योंकि पहले मूल मे भी 'नहीं ही' है। वह 'है', कैसे रहेगा ? वह विद्या रहेगी क्या ? मान बड़ाई रहेगी क्या ? धन रहेगा क्या ? पद रहेगा क्या वह ? जो मूल मे ही नहीं है, वह अन्त में भी नहीं ही होगा। इससे तुम बडे कैसे हो जाओगे ? विद्या नहीं है। हम पढ़ जायेंगे तो बडे हो जायेंगे। तो विद्या जो "नहीं है" अभी उसको ले लिया हमने! उससे बड़े कैसे हो जायेंगे ? नहीं को लेकर बड़े नहीं बन सकते।

बड़ा कौन है ? शूरवीर कौन है ? श्रेष्ठ कौन है ? जो "है", सदा नित्य निरन्तर है, उसको प्राप्त कर ले, वह बड़ा है क्योंकि "है" उसकी प्राप्ति होने पर उसका अभाव होता ही नहीं। "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः!" सत् का अभाव नहीं होता। सत् है, तो अभाव कभी नहीं होता। अभी अभाव नहीं है। पहले अभाव नहीं था। उस भाव रूप की प्राप्ति कर ले। अभाव से विमुख हो जाय, उसी की शूरवीरता है। उसके घाटा पड़ेगा नहीं कभी। 'नाभावो विद्यते सतः' सत् का अभाव होता नहीं कभी। तो सदा रहने वाली चीज को प्राप्त कर लें। वह ही बड़प्पन की बात है। परन्तु मानता है, ये "नहीं है" वह मिल जाय तो मैं बड़ा हो जाऊं, इस वास्ते इस तरफ ख्याल करें। तो "है उस चीज को प्राप्त करना है। "है" प्राप्त करने मे क्या कठिनाई है ? "है" को प्राप्त

करना कठिन मान लेते हैं, तो कहते हैं कि उसे प्राप्त करना कठिन है। वास्तव में तो "नहीं" को प्राप्त करना कठिम है। "है" को प्राप्त करना कठिन कैसे है ? आप जरा सोचो। जो है उसको प्राप्त करना कठिन कैसे ? "नही है" उसको प्राप्त करना कठिन है, क्योंकि वह है ही नहीं। जो नहीं है उसे कहीं से लाओ, कहीं जाओ, कुछ बनाओ, तब न मिलेगा, 'नहीं है वह'। "है" वह तो प्राप्त सबको है। वह सब देश में है। सब काल में है। सब वस्तुमें है। सम्पूर्ण व्यक्तियों में है। सबमे परिपूर्ण है। वह है, ऐसा सुनते हैं। उससे मिले बिना मैं रह नहीं सकता। उसको प्राप्त करना है हमको तो ! "है" में अभाव क्या है; कि "है" का अनुभव नहीं हो रहा है। "है" शास्त्र कह रहा है, सन्त-महात्मा कहते हैं, सब कहते हैं कि "है"। आप अलग-अलग धर्मों में देखो—जैन को देख लो, सनातनियों को देख लो, यहूदियों को देख लो, ईसाइयों को देख लो; किसी को भी देख लो—एक "है" तत्व, यह मानते सभी हैं। उसमें मतभेद है क्या ? कोई द्वैत, अद्वैत माने वो अलग बात है। पर है एक तत्व। उस "है" तत्व को प्राप्त करना है। वह "है" तत्व ऐसा नहीं है, कि किसी को मिले, किसी को न मिले। किसी का हो और किसी का न हो ! ये नहीं कि सनातनियों का है और बौद्धों का नहीं है। वह सबका है। उसका नाम हम भले ही अलग-अलग धर दें। कोई अल्लाह, खुदा, कोई जिहोवा, गॉड, राम, आत्मा, ब्रह्म कह देता है, ये भाषा है अलग-अलग। परन्तु वह है एक तत्व। उस "है" तत्व की प्राप्ति सबको हो सकती है। कभी मिले और कभी न मिले, ऐसा नहींहै।

अभाव किसे कहते हैं ? जो कभी किसी क्षण नहीं है, वह कभी नहीं है। ये शरीर पहले नहीं थे और आगाड़ी नहीं रहेगे ! तो अभी है, ये बिलकुल वहम है, क्योंकि पहले नहीं थे और अन्त में नहीं में ही लीन हो जायँगे। तो नहीं पाना ही रहेगा। ये सब नाशवान है। नाशवान् शब्द वैसे ही बना जैसे 'धनवान्' शब्द बना। धन् से ही धनवान् हुआ। धन नहीं है तो धनवान् नहीं है। धन नहीं होगा तो धन्वान् रहेगा

क्या ? ऐसे ही संसार क्या हैं, नाशवान्। नाश ही नाश है और कुछ नहीं ! नाशवान् है। नाश के सिवा क्या है ! नाश के सिवाय है तो नाशवान् कैसे हुआ। धन नहीं तो धनवान नहीं है नाश ही नाश है उसमें निश्चिंत बैठे हैं, ये जरा सोचने की बात है। अतः अपना अनुभव है इसका आदर करें। नाशवान् के भरोसे कैसे बैठे हैं ? नइका तो काम कर दो। बह रहा है तो बहा दो। सेवा करो। कर्त्तव्य करो। इसके भरोसे नहीं रहना है। क्योंकि हम तो हैं और ये नहीं है, इस वास्ते केवल इस बात का अनुभव करें, तो "है" की प्राप्ति हो जाय। निहाल हो जांय। फिर मौज हो जायेगी। दुख रहेगा नहीं। सताप-शोक-भय-आफत रहेगा नहीं। सम्पूर्ण आफत मिट जायेगी। एकदम सच्ची बात है।

संसार मे जो कुछ भी दिखायी देता है, वह प्रतिक्षण परिवर्तनशील और नाशवान् है। विचार करने से सभी को इसका अनुभव भी होता है। यह कौन नहीं जानना कि जन्म से लेकर आजतक यह शरीर प्रतिक्षण बदलता रहा है। अपने इस अनुभव को वास्तविकता को समझकर इस पर दृढ़ रहने से जो संसार के आधार हैं एवं जिनसे संसार सत्य दिखायी देता है—

जासु सत्यता ते जड़ माया। मास सत्य इव मोह सहाया॥
(मानस १।११६।८)

—वे परमात्मा सर्वत्र दिखायी देने लगते हैं। साधकों द्वारा एक बहुत बड़ी भूल यह होती है कि वे सुनते, पढ़ते और विचार करते समय तो अपने अनुभव को महत्व देते हैं, किन्तु अन्य समय मे उसको उपेक्षा कर देते हैं। इसी भूल के फलस्वरूप वे परमात्म तत्व का अनुभव नहीं कर पाते। अतः उन्हे चाहिए कि वे ससार को प्रतिक्षण परिवर्तनशील और क्षयधर्मा मानें और अपने इस अनुभव को कम न होने दें।

(गीता का ज्ञानयोग से)

—:o:—

(५) प्रभु मिलन की व्याकुलता

अपनी अच्छी कहलाने वाली, प्यारी कहलाने वाली वस्तु, व्यक्ति वियुक्त हों तो व्याकुलता नहीं होगी क्या ? जिसको हम बहुत बढ़िया समझते हैं, जिस व्यक्ति को, जिस पुरुष को, जिस स्त्री को बहुत आवश्यक समझते हैं, वह एकदम मर जाय तो व्याकुल्ता होती है। क्यों होती हैं, इस पर अब ध्यान देना। यह जो आपको बहुत बार बात सुनायी है कि हमारी बाल्यावस्था नहीं रही, कब छोड़ी क्या यह याद है? 'बाल्यावस्था हमने छोड़ी नहीं, छूट गई' इसी बात को तरफ ख्याल करने से यह बात बिल्कुल अनुभव में आ जाती है कि अभी जो हमारी अवस्था है, यह छूट रही है क्योंकि बाल्यावस्था छोड़ने का जो कानून था वह ही आज है। अभी जो हमारी अवस्था है, वह छूट रही है। प्रत्येक क्षण छूट रही है। संसार का हमारा जो संयोग हमने माना है, यह सयोग केवल माना हुआ है। यह सयोग है, वास्तव मे उसका वियोग हो रहा है, प्रतिक्षण। एक वस्तु जब हमारी चली जाती है, कोई मर जाता है तो व्याकुलता होती है। पूरा का पूरा संसार हमारे से छूट रहा है, प्रतिक्षण। कोई ऐसा क्षण नहीं जिसमे इस संसार से वियोग न होताहो। मानो सम्पूर्ण धन और सम्पूर्ण व्यक्तियाँ हमारी तरफ से जा रही है, मर रही है, प्रतिक्षण। यह बात सच्ची है या झूठी, शका होतो बोलो ? प्रत्येक क्षण मर रही है। एक ही प्रिय वस्तु जाने से व्याकुलता हो रही है और यहां तो सारी वस्तुएं जा रही है। रोक सकते नहीं। इन सबका वियाग हो रहा है। फिर भी प्रभु मिलन की व्याकुलता क्यों नहीं हो रही है ? इसमे क्या बाधा है ? बाधा इसमे यह है कि आपने इन मे से कुछ साथ अपना सयोग माना है। कुछ व्यक्तियों के साथ, वस्तुओं के साथ, परिस्थितियो के साथ हमने हमारा सम्बन्ध माना है। हमारा इनका सम्बन्ध है, ये आपने माना है, सम्बन्ध तो था नहीं फिर रहेगा नहीं और अभी भी प्रतिक्षण जा रहा है, वियोग हो रहा है पर आपने माना है कि हमारा संबध है। मान्यता को

सच्ची मान लिया है, यही एक कारण है कि संसार की सभी वस्तुओं का। वियोग होते हुए भी व्याकुलता नहीं होने का और यह मान्यता सच्ची नहीं है। सम्बन्ध को सच्चा मान लिया कि यह तो हमारा संबंध है ही, यही महान् भूल है। किसी व्यक्ति के मरने पर तो कहते ही है कि आज वियोग हो रहा हैं। पर आज क्या वियोग हुआ, प्रतिक्षण वियोग हो रहा है। जबसे बच्चा जन्मता है तबसे मरने तक हरदम मरता है प्रतिक्षण मरता है। मृत्यु को तरफ जा रहा है कि नहीं। इसी प्रकार अपनी कहलाने वाली मात्र वस्तु वियोग को ओर जा रहा हैं, खत्म हो रही है।

जब इन सम्पूर्ण को खत्म होते हुए समझोगे तो व्याकुलता कम रहेगी क्या ? और इन नाशवान वस्तुओं के साथ हमारा सबंध है यह तो बिलकुल माना हुआ है, चिपकाया हुआ है। इस माने हुए सबंध को सच्चा माना है, यही भारी भूल है इसमे शका हो तो बोलो। यह सबध विच्छेद कर लो अभी, तो प्रभु मिलन की व्याकुलता आ जायेगी। सबध विच्छेद तो हो ही रहा है। यदि इनसे सबध सर्वथा विच्छेद हो जाय तो तत्क्षण तत्त्व की प्राप्ति हो जाय, जिसे जीवन-मुक्ति कहते हैं। यह जो संयोग है, उसका वियोग प्रतिक्षण हो रहा है। प्रतिक्षण ही उसका वियोग हो रहा है। कोई ऐसा क्षण नहीं जब वियोग न होता हो। यह वियोग स्वतन्त्र है, सबल है, बड़ा भारी जबरदस्त है। इसको रोकने की किसी की ताकत नहीं कि इसे रोक सके। विज्ञान ने बहुत आविष्कार किया, परन्तु अभी तक इसका आविष्कार नहीं हुआ है, और होगा भी नहीं। सम्भव ही नहीं है कि वियोग को रोक ले। वियोग न होने दे। वियोग कभी रुकने वाला नहीं है। संपूर्ण का ही वियोग हो रहा है। एक आदमी के मरने से व्याकुलता होती है और यहाँ सबके सब ही मर रहे हैं। प्रत्येक क्षण हमारे से अलग हो रहे है। अलग हो ही रहे हैं, मर रहे हैं। अतिम श्वांस है यह हमारा। जो श्वांस अभी जा रहे ही तो है वे अन्तिम है, यह पीछा आवेगा क्या ? आप जरा समझे इसे जैसे कि केवल १-२ श्वाँस बाकी है तो हम कहते हैं कि अन्तिम श्वांस ही है यह। वैसे ही अभी जो श्वांस जा रहे हैं वे भी तो पीछा लौटकर न आने के कारण अन्तिम ही तो है। समझ लो लाखों श्वांस थे, उनमे से यह

अन्तिम श्वांस है, तो अन्तिम श्वांस जा रहा है। इतना वियोग हो रहा है हमारे साथ जितना घर वालो के रहने का समय था वह समय प्रति श्वांस बीत रहा है। यह वियोग हो रहा है, प्रत्येक वस्तु से, प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक से हमारा नित्य निरन्तर वियोग हो रहा है। पर उनसे सम्बन्ध आपने माना हैं, और इस मान्यता पर आप दृढ़ हो गये तो यह सम्बन्ध सच्चा दीखता है। यह सम्बन्ध बिलकुल माना हुआ है, सत्य है, ही नहीं, और इनसे वियोग हा रहा है, यह सच्चो बात है, यह झूठी बात है हो नही। अब इस सच्ची बात का आप मान लें तो प्रभु मिलन की व्याकुलता आपसे आप हो जायेगो।

सबका सब वियोग हो रहा है। इस 'वियोग से अवस्था दो होती है। (१) जब सयोग का सद्भाव नही रखोगे और इस संबध को सत्ता नहीं दोगे तो पहली अवस्था तो यह होगा कि हर समय उठते-बैठते 'यह मिट रहा है' ऐसा अनुभव होगा। सब जितना दोखता है, जितना अपना कहलाता है, यह सब मिट रहा है। प्रतिक्षण मिट रहा है। यह बात हरदम भीतर रहेगी। जैसे अभी एक तरह से हम कहते हैं कि हम सरदारशहर मे है। यह बात बिना याद रखे याद रहती है इससे भी ज्यादा यह बात (मिट रही है) याद रहेगी हरदम। सरदार शहर में तो रहने का भाव है, पर इसमे खत्म होने का भाव है। हर समय वियोग हो रहा है। सरदारशहर मे रहने में रहेगे, उसमे जितना हमारा भाव है कि इतना हम रहेगे यानि दो महीने हम से अब नौ दिन चले गये तो अब दो महीने बाकी है क्या ? तो आपका हमारा वियोग हो रहा है कि नही ? ६० दिन मान लें तो ५१ दिन रहे ? न। तो वियोग ही तो हो रहा है। आप आकर जिस समय यहां बैठे तब से अब उतना समय रहना है क्या ? आपका हमारा इतना वियोग तो हो ही गया और हो रहा है, हरदम हो। इस बात को अगर दृढ़ता से आप मान ले तो परम व्याकुलता हो जायेगो चलते-फिरते यह विचार होने लगेगा कि हम कैसे निश्चिन्त बैठे है, जबकि इनसे प्रतिक्षण वियोग हो रहा है। सब मिट रहा है, सबके साथ सबध मिट रहा है, हरदम मौत आ

रहो है, फिर निश्चिन्त कैसे बैठे हैं ? एक प्रिय वस्तु के जाने से भी दुःख होता है, तो जब सब की सब जा रही है तो कितना दुःख होगा ? शरीर जा रहा है, कुटुम्ब भो भी जा रहा है सब ही जा रहे हैं, फिर साथ कौन रहने वाला है ? इनमे से कोई रहने वाला नही। हरदम वियोग हो रहा है। यह बात सत्य है कि झूठी ? यदि आप इस सत्य बात को मान लें, इसका ठीक अनुभव करलें तो व्याकुलता होगी कि नहीं ?

परन्तु आपने अपनी मान्यता में मान रखा है कि अभी थोड़े ही मरते हैं, अभी थोडे ही मरते हैं। मरता है, जो अभी ही मरता है, कल मरेगा क्या ? जब मरेगा तब अभी ही मरेगा कल नहीं मरेगा फिर भो कितनी बड़ी-भारी भूल है कि 'अभी थोडे मरते है, ऐसा ही मानते हैं। मरते है सब, बिलकुल अभी मरते हैं। कल मरते है, परसों मरते हैं, वे भी अभी ही मरते हैं। मरने वाले का यही विश्वास है कि अब श्वांस गया, वह वापिस नहीं आवेगा, बाहर जा ही रहा है तो आवेगा क्या वापिस ? इस वास्ते वियोग की दूसरी अवस्था होगी कि उसे कोई चीज नहीं सुहावेगी।

नारायण हरिभजन में ये पांचो न सुहात।
विषय-भोग, निद्रा, हसी, जगत् प्रीती बहुबात ॥

इसी श्वांस मे सब जा रहा है। हरदम जा रहा है। किसके साथ स्नेह रखें। हरदम मिट रहा है।

"दिन-दिन छांइया जात है। तासों किसा सनेह।"

दिन-दिन छांइयां जात है' दिन दिन छोड़ते जा रहा है उससे कैसा स्नेह, भाई ? आज बाल्यावस्था को आप याद थोड़े ही करते हो कि बाल्यावस्था थी। ये तो याद करने से याद भी आजावेगी पर मरने के बाद तो यह याद भी न आवेगा कि मरने से पहले कहां थे ? पहले कहां से आये हैं, याद आता है क्या अब ? नहीं। तो यहां से जाने के बादे यहां का याद तक भी नहीं रहेगा। इतना कच्चा मामला है।

वियोग हो रहा है प्रतिक्षण। यदि आप इस सच्ची बात को मान लो तो व्याकुलता, क्या महाभारी, व्याकुलता हो जाय, एकदम तो (बहुत) हमारा

गाई है नाम की महिमा कोई क्या कह सकता है ?

"कहौ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥"
(मानस १।२५।६)

नाम के गुण तो स्वयं भगवान् भी गाना चाहे तो नहीं गा सकते। नाम की अपार महीमा है, असीम महिमा है, अनन्त महिमा है। सगुन और निर्गुन परमात्मा के दो रूप माने जाते हैं तथा परमात्मा की प्राप्ति को कठिन भी माना जाता है पर वही परमात्मा नाम से प्रकट हो जाते हैं। सब जगह रहते हुए भी नाम-जप से प्रगट हो जाते हैं ऐसा बताया है, गोस्वामी जी महाराज ने।

"व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनाशी। सत चेतन घन आनन्द रासी ॥"

भगवान के दो स्वरूप बताये— (मानस १/२२/६)

"अगुन सगुन, दुई ब्रह्म सरूपा।" १/२२/१ है दोस्वरूप हैं अगुण और सगुण। उन दोनों मे अगुण रूप की बात बताई कि जो सब जगह परिपूर्ण व्यापक है, वह सत्-चेतन-घन और आनन्द राशि है। आनन्द राशि यानी आनन्द ही आनन्द है। केवल आनन्द ही आनन्द स्वरूप है, वह सब जगह है। ऐसे निराकार रूप से परमात्मा सब जगह पूर्ण रूप से विराजमान रहने पर भी "सकल जीव जग दीन दुखारी"—(मानस १।२२।७) जगत के सपूर्ण जीव दीन दुःखी हो रहे हैं। आनन्द राशि परमात्मा के निर्विकार रूप से रहने पर भी जीव दुःखी हो रहे हैं, जब कि वे (परमात्मा) कमजोर रूप से नहीं रहते हैं, पूरे के पूरे हैं, सबके हृदय मे विराजमान हैं फिर सबके सब ही दीन और दुःखी येक्या बात है ? क्योंकि सब जगह रहते हुये भी परमात्मा आनन्द रूप से प्रगट नहीं है। ऐसे जो आनन्द राशि परमात्मा है "नाम निरूपन नाम जतन तें" (मानस १।२२।८) यदि नाम का यत्नपूर्वक निरूपण किया जाय यानी ठीक तरह से समझकर जपा जाय तो "सोउ प्रगटत" वे ही हृदय मे प्रकट हो जाते हैं। इससे 'नाम निरूपण नाम जतन तें' कहा। यहाँ निर्गुण के विषयमे निरूपन की बात कहते हैं। दूसरे जो आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी भक्त हैं, उनके लिए भी नाम जप की विशेष बात बतायी।

यहाँ निर्गुण के विषय मे निरूपण की बात कहते है। निरूपन ठीक तरह से हो कि नाम क्या चीज है? 'क्या चीज है नाम' ऐसा गहरा उतरे और नाम जपे तो फिर उसकी प्राप्ति हो जाय। निर्गुण प्राप्ति के लिये इसके पहले भी नाम जपने की बात कही है।

'अगुन सगुन बीच नाम सुखासी
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी' (मानस १।२१।८)

निर्गुण और सगुण के बीच में नाम साक्षी है, दुभाषिया है। जैसे एक भाषा एक जानता है, दूसरी भाषा दूसरा जानता है, तो उन दोनों की आपस मे बात नहीं हो सकती। उसकी भाषा को वह नहीं समझता और उसकी भाषा को वह नहीं समझता। दोनों भाषाओं को समझाने वाला दुभाषिया बीच मे होता है तो दोनों को समझा देता है। उसके भाव उसको समझा दे, उसकी भाषा को समझ कर उसको समझादे। वह दोनों को अलग अलग समझा देता है। वैसे ही नाम अगुण, सगुण दोनों स्वरूपोंके बीच मे साक्षी है कि दोनों के स्वरूप को जना देता है। मनुष्य जब नाम का आश्रय लेता है तो अगुण-सगुण दोनों स्वरूपों को जान जाता है। निर्गुण को सगुण जनादे, सगुण को निर्गुण जना दे, ऐसे नहीं; मानों नामजपने मे नाम महाराज ऐसे साक्षी हैं कि दोनों को ठीक से जना देते हैं। ऐसे नाम महाराज साक्षी हैं। निर्गुण का भी ज्ञान हो जाता है, और सगुण का भी ज्ञान हो जाता है तथा सगुण का साक्षात्कार भी हो जाता है—नाम जप से। इसलिए गोस्वामीजी महाराज ने नाम जपते हुए कहा—

को बड़ छोट कहत अपराधू
सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू। (मानस १।२०)

नाम और नामी इन दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा है ऐसे कहने में अपराध लगता है। परन्तु दोनों के गुणों का भेद कह दूँगा, उससे श्रेष्ठ पुरुष समझ लेंगे। इस वास्ते बड़, छोट नहीं कहता हूँ। ऐसे कह करके

कौन है ? दृष्टांत दिया था न घोड़े वाले का, उसने कथा सुनी, उसे ऐसी लगी कि चल दिया सब कुछ छोड़ के। घोड़ा कहाँ है, कहाँ नहीं, पता ही नहीं एक दिन बात सुनने का इतना असर हुआ। पर आप तो सदा सुनते हो कि नहीं। सब छूटना हो छूटता चला जा रहा है। बाल्यावस्था को देखो तो वह शरीर, वह सामग्रो, वे साथी आज कुछ नही है। जैसे वह सामग्री सब मर गई ऐसे ही ये सब सामग्री प्रतिक्षणमर रही हैं। ये कोई और तरह के हैं क्या ? बाल्यावस्था के ज्योंही है केवल भावना है कि यह अभी तो है, और रहेगा मेरे पास। यह सिवाय भावना के और क्या चीज है बताओ ? अतः व्याकुलता के लिए आप इस बियोग की बात को मान लें।

विचार से व्याकुलता अभी हो जाय, इसी क्षण। हमारा साथ तो है ही नहीं। किनके भरोसे है ? तुम्हारा कौन है ? आज अभी प्राण निकलें तो है कोई सहायता देने वाला ? कोई रख लेगा हमारे को ? उस दिन कोई साथ देनेवाला नहीं है। 'वही दिन आज है' यह होगा आपके मानने से। इस सच्ची बातको मान लें तो अभी इसी क्षण प्रभु मिलन की व्याकुलता जागृत हो जाय।

—:o:—

(६) नाम-महिमा

पुस्तकों को देखने से और सन्त महामाओं की वाणी देखने से दो बातें विशेषता से सामने आती हैं एक तो-सत्संग और दूसरी नाम-जप। इन दो की महिमा बहुत आई है। किसी भी सम्प्रदाय में देखो, नामो में तो भेद है, परन्तु नाम-जप में भेद नहीं है। किसी एक सम्प्रदाय में किसी नाम की मुख्यता है, तो किसी दूसरे सम्प्रदाय मे किसी दूसरे नाम की मुख्यता है। पर नाम जप को सभी मानते हैं। ऐसे ही सत्संग है। इसकी महिमा भी सभी जगह है। नाम जप मे लग जाय आदमी सच्चे हृदय से तो सब काम ठीक बन जाते हैं। **परन्तु नाम जप में सबसे पहले यह बात दृढ़ करनी है कि यह साधन (नाम जप का साधन) सर्वोपरि है।** ये भाव हो जाय हृदय में। साधन का जब तक मनुष्य के खुद के हृदय में आदर नहीं होगा, तब तक उस साधन से परमात्मतत्व की प्राप्ति नहीं होगी। इस वास्ते नाम-जप रुपी साधन का महत्व अन्तःकरण में दृढ़ होना चाहिये कि नाम-जप के समान कोई साधन नहीं है। ये सबसे श्रेष्ठ साधन है। नाम-जप को साधारण समझ कर करोगे तो फिर दूसरा भी साधन करना पड़ेगा। नाम जप ही सर्वोपरि साधन है तो फिर हमे दूसरे साधन की आवश्यकता ही नहीं। हृदय मे ऐसा भाव हो जाय, ऐसा जँच जाय कि नाम-जप से सब कुछ मिल जाएगा। क्योंकि सन्तों का सिद्धान्त है।

'आदि अन्त सब का, आदि अन्त सब जोय।
जेहि उर यह धारण करे तेहि उर परगट होय॥"

जहां यह सर्वोपरि है आदर देकर अपने हृदय मे यह निश्चय कर लेता है, वहां परमात्मा प्रकट हो जाते हैं। वह तो सब जगह परिपूर्ण हैं ही। स्वतः है ही। जिसका भाव जहां बैठ जाता है, वहां ही परमात्मा प्रकट हो जाते हैं।

प्रकट रूप में नाम की महिमा गोस्वामीजी महाराज ने बहुत अधिक

गाई है नाम की महिमा कोई क्या कह सकता है ?

"कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥"

(मानस १।२५।६)

नाम के गुण तो स्वयं भगवान् भी गाना चाहे तो नहीं गा सकते। नाम की अपार महीमा है, असीम महिमा है, अनन्त महिमा है। सगुन और निर्गुन परमात्मा के दो रूप माने जाते हैं तथा परमात्मा की प्राप्ति को कठिन भी माना जाता है पर वही परमात्मा नाम से प्रकट हो जाते हैं। सब जगह रहते हुए भी नाम-जप से प्रगट हो जाते है ऐसा बताया है, गोस्वामी जी महाराज ने।

"व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनाशी। सत चेतन घन आनन्द रासी ॥"

भगवान के दो स्वरूप बताये— (मानस १/२२/६)

"अगुन सगुन, दुई ब्रह्म सरूपा ।" १/२२/१ है दोस्वरूप हैं अगुण और सगुण। उन दोनो मे अगुण रूप की बात बताई कि जो सब जगह परिपूर्ण व्यापक है, वह सत्-चेतन-घन और आनन्द राशि है। आनन्द राशि यानी आनन्द ही आनन्द है। केवल आनन्द ही आनन्द स्वरूप है, वह सब जगह है। ऐसे **निराकार रूप से परमात्मा** सब जगह पूर्ण रूप से विराजमान रहने पर भी "सकल जीव जग दीन दुखारी"—(मानस १।२२।७) जगत के संपूर्ण जीव दीन दुःखी हो रहे हैं। आनन्द राशि परमात्मा के निर्विकार रूप से रहने पर भी जीव दुःखी हो रहे है, जब कि वे (परमात्मा) कमजोर रूप से नहीं रहते हैं, पूरे के पूरे हैं, सबके हृदय मे विराजमान हैं फिर सबके सब ही दीन और दुःखी येक्या बात है ? क्योंकि सब जगह रहते हुये भी परमात्मा आनन्द रूप से प्रगट नहीं है। ऐसे जो आनन्द राशि परमात्मा हैं "नाम निरूपन नाम जतन तें" (मानस १।२२।८) यदि नाम का यत्नपूर्वक निरूपण किया जाय यानी ठीक तरह से समझकर जपा जाय तो "सौउ प्रगटत" वे ही हृदय मे प्रकट हो जाते हैं। इससे 'नाम निरूपण नाम जतन तें' कहा। यहाँ निर्गुण के विषयमे निरूपन की बात कहते हैं। दूसरे जो आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी भक्त हैं, उनके लिए भी नाम जप की विशेष बात बतायी।

यहाँ निर्गुण के विषय में निरूपण की बात कहते है। निरूपन ठीक तरह से हो कि नाम क्या चीज है? 'क्या चीज है नाम' ऐसा गहरा उतरे और नाम जपे तो फिर उसकी प्राप्ति हो जाय। निर्गुण प्राप्ति के लिये इसके पहले भी नाम जपने की बात कही है।

'अगुन सगुन बीच नाम सुखासी
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी' (मानस १।२१।८)

निर्गुण और सगुण के बीच में नाम साक्षी है, दुभाषिया है। जैसे एक भाषा एक जानता है, दूसरी भाषा दूसरा जानता है, तो उन दोनों की आपस मे बात नहीं हो सकती। उसकी भाषा को वह नहीं समझता और उसकी भाषा को वह नहीं समझता। दोनों भाषाओं को समझाने वाला दुभाषिया बीच में होता है तो दोनों को समझा देता है। उसके भाव उसको समझा दे, उसकी भाषा को समझ कर उसको समझादे। वह दोनों को अलग अलग समझा देता है। वैसे ही नाम अगुण, सगुण दोनों स्वरूपोंके बीच मे साक्षी है कि दोनों के स्वरूप को जना देता है। मनुष्य जब नाम का आश्रय लेता है तो अगुण-सगुण दोनों स्वरुपों को जान जाता है। निर्गुण को सगुण जनादे, सगुण को निर्गुण जना दे, ऐसे नहीं; मानो नामजपने में नाम महाराज ऐसे साक्षी हैं कि दोनों को ठीक से जना देते हैं। ऐसे नाम महाराज साक्षी हैं। निर्गुण का भी ज्ञान हो जाता है, और सगुण का भी ज्ञान हो जाता है तथा सगुण का साक्षात्कार भी हो जाता है—नाम जप से। इसलिए गोस्वामीजी महाराज ने नाम जपते हुए कहा—

को बड़ छोट कहत अपराधू
सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू। (मानस १।२०)

नाम और नामी इन दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा है ऐसे कहने में अपराध लगता है। परन्तु दोनों के गुणों का भेद कह दूँगा, उससे श्रेष्ठ पुरुष समझ लेंगे। इस वास्ते बड़, छोट नहीं कहता हूँ। ऐसे कह करके

और नाम को बडा बताया, नाम को सगुण से भी बड़ा बताया, निर्गुण से भी बड़ा बताया। दोनो से बड़ा बताने मे पहले निर्गुण से आरम्भ कर दिया है। निर्गुण से बडा यह बताया कि

अस प्रभु हृदयँ अछत अधिकारी
सकल जीव जग दीन दुखारी (मानस १।२३।७)

सबके हृदय में परमात्मा के रहते हुए भी सकल जीव दुखी हैं और वे ही जीव यदि नाम जप करे तो वही परमात्मा उनमे प्रकट हो जाय। ऐसे वर्णन करते हुए कहा कि 'निरगुण एहि भाँति बड़ नाम प्रभाव अपार।' निर्गुण से तो ऐसे वडे है फिर कहते हैं कि 'कहउँ नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार'। (मानस १।२२ दोहा)

अब राम (सगुन) से बड़ा कहता हूँ। 'निर्गुण से एहि भांति बड़' कहने से ब्रह्म से बड़ा। 'राम से बड़ा कहने से' सगुण से बड़ा। (सगुन से बड़ा) ऐसे कह करके जहां समाप्ति की वहां पर कहा कि भाई ! नाम दोनों से बड़ा है। 'मोरेमत बड़ नाम दूहूतें।' पहले भी कह दिया। मेरे मत से 'नाम दोनो से बड़ा, है ! और अन्त मे उपसंहार करते हुए फिर कहा कि ब्रह्म तें नामु बड़ बरदायक बरदानि।' वहां ब्रह्म और राम दोनों बता दिया। ब्रह्म निर्गुण और राम सगुण।

"ब्रह्म राम ते नामु बड़ ब्रह्म राम ते नाम बड़ बरदायक बरदानी।
रामचरित सत कोटिमहँ लिये महेस जियँ जानि"।
(मानस १।२५)

कों सौ करोड़ श्लोक की रामायण में महेश अर्थात् भगवान् शकर ने जानकर दो नामों को ले लिया। दो नाम यानी दो अक्षर वाले नाम को सबसे बडा समझ कर ही उन्होंने इसे लिया। **रामायण सत कोटि महँ"** **इतिहास ऐसा सुना है** कि—वाल्मिकि जी ने रामायण मे एक अरब श्लोक यानी सौ करोड़ श्लोक बनाये तो भगवान् शंकर बडे खुश हुए। शंकर वहुत प्रसन्न हुए कि बहुत वढ़िया चोज है। ऐसी बढ़िया चीज तो सबको मिलनी चाहिए। अतः इसके तीन विभाग किये और कहा कि

तीनों लोको के भाग तीनों लोकों मे पहुच जाँय। सौ करोड मे ३३ करोड़ तीन जगह देने पर एक करोड़ बच गया। एक करोड के पुनः तीन विभाग किये ३३ लाख तोन जगह देने पर एक लाख बच गया। फिर तीन विभाग करके ३३ हजार देने पर एक हजार बच गया और एक हजार के तीन विभाग करने पर १०० बच गये। १०० के तीन विभाग करने पर १ श्लोक बच गया। एक श्लोक के होते हैं ३२ अक्षर। उनको तोन भागों में बांटकर १०-१० अक्षर दे दिये और अब दो अक्षर बच गये। अब वे किसको दें ? भगवान् शकर ने कहा कि ये दो अक्षर मैं ले लेता हूँ। अतः **'रामायन सतकोटि महँ' में सार दो अक्षर 'राम' निकले, जिसे भगवान् शकर ने ले लिया—'राम' "यही सार है रामायण का रामायन् सत कोटि महँ लिये महेस जियँ जानि'** । भगवान् शंकर ने सार दो अक्षर 'राम जान कर ले लिया। तो नाम सबसे बड़ा हुआ, सबसे श्रेष्ठ हुआ, सार रूप हुआ।

नाम प्रसाद संभु अविनाशी।
साजु अमंगल मंगल राशी॥ (मानस १।२५।१)

भगवान् शकर का साज तो अमगल है, क्योंकि श्मशानों मे रहते हैं और चिता की भस्मी लगाते हैं तथा प्रेत, भूत, पिशाचों के साथ रहते हैं, तो भी ऐसे मगलराशि है—कि नाम लेने मात्र से मगल कर देवें, और मगल भी ऐसा विशेष कर देवे कि लोक-परलोक सब दे देवें अर्थात् सपत्ति-वैभव आदि भी सब देवें और परमात्मतत्व का ज्ञान भी दे देवें। दोनों बातें पूरी दे देते हैं। 'राम-नाम' के प्रभाव से हो भगवान् शकर काशो मे मरने वालों को मुक्ति देते हैं। 'सदाव्रत मे कोई तो आटा देता है, कोई दाल देता है, कोई रोटी देता है पर भगवान् शंकर ने कहा कि हम तो भाई ! मुक्ति देंगे।

"मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघहानिकर।
जहँ बस सभु भवानि सो कासी सेइअ कसन॥ (मानस ४ आरम्भ)

काशी धाम मुक्ति का हेतु है। मुक्ति किसी को लेना हो तो काशी जाकर रह जाओ तो वहाँ "काशीमरणान्मुक्ति" वहां मरने मात्र से

मुक्ति हो जाती है। भगवान् शंकर ने कहा—जो जीव मुक्ति चाहे वह आ जाये हमारे क्षेत्र (काशी) मे, खुला सदाव्रत है मुक्तिकाः ले जाओ मुक्ति। नाम के प्रभाव से ही भगवान् शंकर इतने बडे दानी हो गये कि काशी में मुक्ति देना शुरू कर दिया। तो, केवल भगवन्नाम के प्रभाव से भगवान् शंकर मुक्ति दाता हो गये। फिर नाम की महिमा और क्या कहे ?

राम नाम सबसे बढ़कर है। आवश्यकता है तत्परता से इसमें लगने की, और लगने में भी एक बात याद रखने को है कि नाम जप करने वाले को **हरदम जप करना चाहिए।** चलते, फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, हर समय नाम का जप करता रहे। जप भीतर से होने पर बढ़िया होता हैं, परन्तु जब तक भीतर से न हो तबतक जबान से ही करता रहे; चाहे कोई बुरा समझे या भला समझे, चाहे कोई निंदा करे या चाहे कोई प्रशंसा करे। नामजप करने वाला किसी बात की परवाह न करे। न तो प्रशंसा की तरफ देखें, न निन्दा की तरफ देखें। न आदर की तरफ देखें, न निरादर की तरफ देखें। अपने तो "राम-राम-राम-राम" नाम (जप) किये ही जाय तो, उससे ही परिवर्तन हो जाता है। नामजपने से बहुत विलक्षणता हो जाती हैं, ऐसी बाते देखने मे आई हैं। जो नाम जप मे लगे हैं, दिन-रात नाम जप मे लगे हैं, उनमे विलक्षणता हुई है, ऐसा कइयो ने बताया है। नाम जपने वालों ने कहा भी है कि हमे नाम जप करने से ऐसा-ऐसा लाभ हुआ, इतना तक कह दिया है कि ऐसा लाभ मेरे को अन्य किसी से भी नहीं हुआ। सेठजी श्री जयदयालजी गोयन्दका ने "तत्वचिन्तामणि" मे लिखा है कि मेरे को जप से जितना लाभ हुआ, उतना श्रीमद्भवद्गीता के मनन को छोड़कर और किसी से भी नहीं हुआ। जितना लाभ गीता के विचार से, उतना नाम-जप से हुआ। तत्वचिन्तामणि के पहले भाग में यह लेख है। लेख का नाम है "परमात्मा की प्राप्ति के लिये नाम-जप सर्वोपरि साघन है" उसमे ऐसा लिखा है कि नाम-ज्प जैसा कोई साघन देखने मे नहीं आया तथा अपना अनुभव भी लिखा है कि **"नाम-जप सर्वोपरि साधन है।** "मेरा अनुभव" शीर्षक ऐसा अवान्तर लेख भी है। वे कहते है-मैं नाम-जप लड़कपन से ही करने लगा था। नाम जप से मेरी विषय वासना दूर होती

चली गयी। नाम जप करने से इतना लाभ हुआ, इतना लाभ हुआ जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। तो, ऐसा लाभ उनको हुआ। श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार ने कहा था कि "**नाम जप से असंभव संभव हो जाता है**"। 'हो सकता है' नहीं कहता मैं! 'असंभव संभव हो सकता नहीं, पर नाम जप से असंभव भी संभव हो जाता है, ऐसा श्रीपोद्दार जी ने कहा और कहा कि मेरा देखा हुआ है। ऐसी नाम महिमा गाई। उनके जीवन में कई ऐसी घटना भी घटी है। नाम मे श्रद्धा होती है, तब ऐसा होता है।

नाम जप में तत्परता से लग जाय, खास बात यह है। नाम-जप ध्यान सहित हो। भगवान् का ध्यान लग रहा है और मुँह से राम-राम-राम-राम राम-राम नाम जप हो रहा है। इससे पहले जब यहाँ (सरदारशहर मे) चातुर्मास हुआ था तो अन्तिम दिन कीर्तन-सत्संग किया था। उस समय हरे-राम की व्याख्या की थी—"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे"—बड़ा सीधा सरल अर्थ किया था। "हरे" ऐसे कहते ही संसार का भाव हरा (खतम्) हो गया। ससार खत्म हो गया। और 'राम कहने से राम ही राम रह गया! 'हरे राम का अर्थ यह (ससार) तो नहीं है और परमात्मा है। 'हरे राम, हरे राम राम राम हरे हरे। पुनः 'हरे कृष्ण, मे 'हरे' माने है ही नहीं और कृष्ण के माने सच्चिदानन्दघन हैं। 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' संसार तो है नहीं, केवल आदन्द ही आनन्द है। ऐसे अर्थ सहित नाम जप किया जाय तो बहुत विशेष आनन्द आता है।

गोस्वामीजी कहते है—'भाव कुमाव अनख आलस हूं।
नाम जपत मगल दिसि दस हूं॥ (मानस १।२७।१)

सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥ (मानस ११८।४)

भगवान्-जयमगल तो सब तरह से है, यदि आदर सहित और ध्यान सहित किया जाय तो जो ससार-समुद्र बड़ा भारी माना जाता है, वह गाय के खुर के समान अर्थात् छोटा सा खाड़े के समान हो जाता है। छोटे खाड़े मे पानी भर जाय, तो उसे पार करने मे क्या देर लगे जैसे छोटे खाड़े के इधर पांव रखा और उधर पांव रख दिया, ऐसे ही नाम जप से संसार समुद्र को यों तर (आसानी) से जायेगा।

(७) संसार से प्रभु की ओर

श्री भगवद्भद्गीता मे भगवान्

इद शरीरं कौन्तेय क्षेत्र मित्यभिधीय ते" (गीता १३।१)।

इद कातात्पर्य, अभी तक जितना हम जानते है उससे अभी तक जितना हम जानते हैं वह सब क्षेत्र हुआ। तो यह जानना भी पूरा काम नहीं आया। अभी जहां तक जाना जाता हैं, उससे पूरा लाभ नहीं होगा। इसलिए आगे भगवाम कहते हैं "क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि" (गीता १३।२) तू मेरे को जान। भगवान को जानने से पूरा लाभ होगा। अतः 'भगवान् है', उसको जानना है। यहाँ जानने का अर्थ है मान लेना। भगवान् ने कहा कि वह (भगवान्) सम्पूर्ण क्षेत्रों मे हैं। अभी हम जो (क्षेत्र को) जानते है यह हमारा नहीं नहीं है और हमारे काम की चीज नहीं है। अभी जिसे हम जानते नहीं है, जिससे हम विमुख हैं, वह हमारे हैं और वही हमारे काम के हैं, अतः उसको मान लें। 'यह' को जितना-जितना जानते हैं, इनसे असंग जो जांय क्योकि असग होना हमारा स्वरूप है। जितनी जानने मे आने वाली वस्तुएँ दीखती हैं, जो परिस्थिती, घटना, क्रियाए हैं, इनके साथ अपने रहते नहीं, लेकिन उनसे हम कभी अलग हो नहीं सकते। फर्क इतना है कि वे तो हमे जानते हैं और हम उनको नहीं जानते। वे ऐसे विलक्षण है कि वे हमारे को जानते हैं। पर हम उन्हे नहीं जानते। क्यो नही जानते ? इसलिए कि (१) हमारे जानने मे जो आता है वह इन्द्रियो के द्वारा, बुद्धि के द्वारा होता है और (२) उनमे हम आसक्त हो गये है, उनमे फस गये है, उनकी ओर खिच गये है। 'यह बदलता है' :—जानते तो ऐसा है, और मानते ऐसा है कि जैसे इन चीजो के हम मालिक हो गये। पर वास्तब मे, मालिक न हो कर गुलाम हो गये है। जो जानने मे वस्तु आती है, जो हमारे सामने उत्पन्न-नष्ट होती है और हमारे परिश्रम से ही पैदा होती हैं, ऐसी वस्तुओं के हम दास बन गये, यह

बड़ी गलती है। यह दासता ही हमे उधर जाने नहीं देती है। जो यह जानता है कि यह दासता है और जो हमारे को भी जानता है आवश्यकता है उसे जानने की।

हमने ससार में इतना जाना पर अभी तक जानने की तृप्ति नहीं हुई। इतना ही नहीं, इनको हम जानते चले जायेंगे तो भी कभी तृप्ति नहीं होगी। और उसको (भगवान् को) यदि जान लें तो फिर जानना बाकी नहीं रहेगा।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्य ज्ञातव्य मवशिष्यते (गीता ७।२)

जिसके जानने के बाद जानना बाकी नहीं रहेगा यानी पूरा जान जायेंगे।

यो ममेवमसंमूढ़ो जानाति पुरुषोत्तम (गीता १५।१५)

परमात्मा को जानने वाला 'सर्व वित्' हो जाता है। उसकी पहिचान बताई है कि वह सर्व भाव से मेरा ही भजन करता है।

"सर्व भावेन मां भजति"

अभी जो भजन करते हैं वह, जिनको हम जानते हैं, उनका भजन करते हैं। जानते हैं वे हमारे काम आते नहीं, साथ रहते नहीं। इसलिए अभी जिन्हे नहीं जानते हैं, उन परमात्मा को हम जान लें। वे हमारे क्योंकि उन्हीं से हम पैदा हुए हैं।

ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः (सानतनः गीता १५।७)

हम जो जानते हैं, जितना जानते हैं यह भी पैदा हुई है, पर यह पैदा हुई नष्ट हो जाएगी। जो हमे जानता है, यदि हम उसका (परमात्मा को) जानेंगे, तो हम उनसे मिल जायेंगे। उनसे मिल जाएगें तो फिर वियोग कभी नहीं होगा। और अभी जिनको जानते हैं, उनको और अधिकता से जानने से भी उनके साथ रहना कभी नहीं होगा। साथ रह ही नहीं सकते। आज तक का विचार करें कि यह ससार और शरीर है, क्या उसके साथ हम हैं? क्या वह हमारे साथ रहा है? साथ मानलें भले ही पर विचार करके देखे, तो मालूम होता है कि शरीर वही नहीं है। शरीर बदल गया। ससार बदल गया। बदल

गया का क्या अर्थ है ? कि इसके साथ हम रह नहीं सकते, इससे हमारा काम पूरा होत नहीं। अब बहम वहम रह गया है कि इतना धन मिल जायेगा, इतना मान मिल जायेगा, ऐसा शरीर हो जायेगा तो निहाल हो जायेंगे। ऐसा तो अपने मानते हैं पर अभी तक एक भी आदमी ऐसा मिला नहीं कि "में निहाल हो गया हूँ—सम्पत्ति से, मान से बड़ाई से, शरीर आदि से"। ऐसा कोई आदमी मिला नहीं अभी तक। मिला हो तो विचार कर लो। आप आप अपने मन में विचार कर लो। क्या आप इन चीजों से तृप्त हो गये ? अब कुछ मिलना बाकी नहीं रहा क्या ? अब कुछ जानना बाकी नहीं रहा क्या ? कुछ करना बाकी नहीं रहा क्या ? ये बाकी न रहे तो मनुष्य जीवन सफल हो गया। न जानना बाकी रहे। न करना बाकी रहे। न पाना बाकी रहे। जब तक जानना बाकी है, तब तक पूरा जाना कहां ? करना बाकी है जब तक, तब तक पूरा किया कहां ? और पाना बाकी है, तो पाया कहां ? पूरा पा जायेंगे तो फिर पाने की इच्छा सदा के लिए मिट जाएगी।

नानवाप्त मवाप्तव्यं (गीता ३।२२)

पाना बाकी नहीं रहेगा कुछ भी। कुछ भी बाकी है तब तक सब कुछ बाकी है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः (गीता ६।२२)

उस लाभ के बाद कोई लाभ बाकी नहीं रहेगा।

तो तीन बातें हैं, न जानना बाकी रहेगा, न पाना बाकी रहेगा न करना बाकी रहेगा। ये बाकी रहे तब तक मनुष्य जन्म सफल नहीं हुआ। जबतक ये बाकी रहेगे तब तक जैसे पशु-पक्षी, स्थावर योनियां हैं, उसी तरह ये शरीर रहा। इस (मनुष्य) में जो विलक्षणता है वह हाथ नहीं लगी। वह हाथ लग जाय तो करना, जानना, पाना बाकी न रहे। यह बात है।

जितना हम जानते हैं, ये हमारे काम आते नहीं, साथ रहते नहीं। इस वास्ते कम से कम ये बात आ जाय आदमी के मन मे

कि जितना हम भोग चुके है, देख चुके है, ले चुके हैं, कर चुके है, जान चुके हैं—इन वस्तुओ से, इन बातों से, इन पदार्थों से हमारी तृप्त होने वाली नहीं, हुई नहीं अभी तक और आगे भी नही होगी क्योकि इन्द्रियां अब नई नही होगी—शरीर पदार्थ अब नया नहीं हागा तो फिर इससे तृप्ति हो कैसे जायेगी।

प्रश्न :— इनसे दूर कैसे हों ?

उत्तर :—इनसे दूर होना क्या है, इसके साथ तो रह ही नहीं सकते आप। आप कहते हैं कि दूर कैसे हो ? मैं कहता हूं कि आप साथ कैसे रह सकते हैं ? बालकपन के साथ रहे क्या आप ? बचपन मे जिसे अपना स्वरूप मानते थे वह आज साथ हैं क्या ? साथ मे तो रह ही नहीं सकते। साथ रह ही नहीं सकते तो फिर 'दूर कैसे हों—यह प्रश्न कैसा ? प्रशन तो यह होना चाहिए कि हम साथ में चिपके हुए दिखते हैं 'यह' कैसे होवे ? 'इसे अपना न मानें' -यह ही दूर होना है। "अपना नहीं मानना है अपने लिये नहीं मानना है"—यह दूर होना है इससे।

प्रश्नः—अपना नहीं है तो किसका है ? संसार का है। किसके लिये है ? तो ससार के लिये है। इस वास्ते अपनी जो चीज दीखे, उसे दूसरो की सेवा मे लगावें, जहां अभाव दीखे, उनकी सेवा मे लगावें। 'अपनी चीज दीखती है और अपनी है नहीं' इसका अर्थ हुआ ? अपनी थी नहीं, रहेगी नहीं, फिर मी अपनी दीख रही है, इसका अर्थ हुआ कि अपना कब्जा तो करो मत और इनको दूसरों को सेवा में लगाओ। लगाने के लिये अधिकार दिया है। सब चीज एकदम फेंक देने या नष्ट कर देने के लिये नहीं दिया है। खर्च करने के लिये दिया है। इनकी समस्या है तो ये उपाय है। शरीर से खूब सेवा करो—सभी की सेवा करो तो उसके लिये भगवान् ने कहा कि—

प्रप्नुवन्ति मामेव सर्व भूतहितेरताः ॥ (गीता १२।४)

प्राणीमात्र के हित मे रत होते हैं, 'वे सदा मेरे को प्राप्त होते है। बोलो, पसन्द आई कि नहीं यह बात ? क्या करना है? कैसे दूर होवे ? इसमे शंका हो, तो, बोलो।

सेवा मे दो बातों का ख्याल रखो। हमने इनके द्वारा इनकी सेवा करी तो ये भी मेरी सेवा करें, हमने इतना उपकार किया तो मे भी इतना उपकार करें—यह इच्छा छोड़ दे—सेवा मे एक बात तो यह ख्याल रखनी है कि हमने सेवा करी तो वह भी सेवा करे और दूसरी बात यह है कि अपनी कहलाने वाली चीज अपनी नहीं है, उसको तो अपनी मानी है। अपनी नहीं तो किस की है। उन्हीं की है। उनकी ही थी तो उनको दे देने पर ऐहसान किस बात का? तब फिर फल चाहना कि इसका हमें फल मिले, महान मूर्खता है। ये तो इन्होंने कृपा की कि हमारे पास इन्हीं की चीज थी, हमने वापस दे दी, उन्होंने ले ली, स्वीकार करली, तो हमारी आफत मिट गई। ये दो बातों का ख्याल रखें "फल भी न चाहना, और न बदले मे लेना"—ये छूटना है, यह दूर करने का उपाय है।

केवल सुनना ही सुनना नहीं, करके देखो। कहां से करें? घर से शुरू कर दें। बाल बच्चो का हित कैसे हो? समान अवस्था वालों का हित कैसे हो? बड़े-बूढ़ों का हित कैसे हो? उनकी सेवा कैसे बने? ये कहने की जरूरत नहीं। ये भीतर के भाव है। मेरे पास कौनसी वस्तु है जिनसे इनकी सेवा हो जाय? अपने पास जो वस्तु है, शरीर है, उससे सेवा कर दो। इनसे आशा न रखो कि यह सेवा करें। तो फिर वह दूर हो गयी। इसे शुरू कर दें अपने घर में से ही। केवल घर में ही नहीं, और दूर में भी दीखे तो उसकी सेवा कर दो, जितनी हो सके उतनी। सबको सुख पहुँचावें पास मे जो भी है, उनकी सेवा मे अर्पण करदो। सबको सुख देना है। अपने सुख चाहे नहीं। बड़ा सुगम काम है। कठिन काम नहीं है। जितना सुगमता से हो उतना ही करना है। कठिनता से नहीं, सुगमता से करो। पर सुगमता का लोभ मत रखो।

लोभ छूटे नहीं, क्या करें? लोभ तो छोड़ना ही पड़ेगा। लोभ छोड़ने में कितनी ही कठिनता पड़े, वह कठिनता तो सहन करनी ही पड़ेगी। यह तो स्वयं को छोड़ना ही पड़ेगा। इसका तो त्याग करना ही पड़ेगा।

दूर कैसे हो, यह आपने पूछा? दूर इस प्रकार हो सकता है। यहां पकड़ा है, यहाँ दूर कर ही दें। दूर यानी बाहर (सेवा) सेवा करना है सुगमता से पर कंजूसी, कृपणता है वह छोड़ना है हो। इस वास्ते आज से इसे शुरू कर दो।

—:o:—

(८) शरणागति का रहस्य (अ)

मेरा तो कहने का मन रहता ही है और पूछने पर विशेषता से उत्तर दिया जाता है। भाई लोग ध्यान से बातों को सुने। जैसे सुनने की कृपा करते हैं, ऐसे ही सुनी हुई बातों को समझने की कृपा करें। समझ में नहीं आवे तो, 'क्या है', 'वह मैं कैसे समझूं'—इस भाव से समझें ता विशेष लाभ होगा। और कहे कि फायदा ही क्या है इससे ? तो कोई बात नहीं, ऐसा कह दो, बिलकुल कह दो, लेकिन फिर उस तत्व को समझ नहीं सकोगे। कल एक भाई ने प्रश्न किया कि आपने जो शरणागति के रहस्य की बात बताई; शरणागति के रहस्य की बात मानो सरल होने पर भी जो बात छिपी रहती है, उसका ठीक ठीक तरह से, वास्तविकता मे उसका जो गहरा तत्व है, वह समझ मे नहीं आता, वह रहस्य कहा आपने। उस रहस्य मे काफी विस्तृत होने पर भी दो बातें मुख्य रही। (१) प्रभु के प्रभाव की तरफ न देखें और (२) अपनी कोई कामना न रखें। तो प्रश्न उठा कि भगवान् के प्रभाव को क्यों नहीं देखें ? कैसे नहीं देखें ? उस पर मैंने कहा किभगवान् के प्रभाव को लेकर भगवान् के साथ जो हमारा प्रेम है; वह प्रेम भगवान् में न होकर प्रभाव मे होगा। और हम कामना रखेंगे तो कामना प्रभु की तरफ न जाने देकर भगवान् के प्रभाव को तरफ ही ले जाती है। इस पर उन्होंने कहा कि भगवान् प्रभावहीन हैं तो भगवान् क्या हुए ? उत्तर दिया गया कि—'भगवान् का प्रभाव नहीं है' यह नहीं कहता मैं। प्रभाव जितना भगवान् का है, उतना महत्व, उतना प्रभाव, उतना ऐश्वर्य, उतना शौर्य, उतना माधुर्य, उतना सौन्दर्य, उतना तेज, उतना बल, उतनी शक्ति, उतनी सामर्थ्य, उतना ओज किसी मे हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। इतना बड़ा भारी प्रभाव है।

नत्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिम प्रभाव

(गीता ११।४३)

अर्जुन ने कहा कि 'अप्रतिम प्रभाव' आप है। दूसरे का प्रभाव उनके भाव के समान भी नहीं हो सकता तो अधिक कैसे हो सकता है ?

मैं प्रभाव का निषेध नहीं करता हूँ। प्रभाव की ओर दृष्टि रखने का निषेध करता हूँ। देखना यह है कि हमारी दृष्टि भगवान् की तरफ है या भगवान् के प्रभाव की तरफ है ? शरणागति की रहस्य में देखा जायगा कि हम भगवान् के शरण होते हैं अथवा भगवान् के प्रभाव के शरण होते है ? भगवान् के शरण हम तब होते है जब हम अपने मे कुछ भी कामना न रखे। कामना होगी, यहां तक कि मुक्ति तक की भी, कल्याण की भी, उद्धार की भी, तो भी भगवान् के प्रभाव की तरफ ही दृष्टि जायेगा। हद कर दी है, यह बात।

हम भगवान् के और भगवान् हमारे। 'भगवान् हमे प्यारे लगें' इतना भाव है। यह भाव इतना गहरा, इतना गहरा, इतना गहरा है कि भाई जब मैं ठीक तरह से विचार करता हूँ तो, भाई! इतने गहरे का विवेचन करने का मैं तो अधिकारी नहीं हूं। परन्तु मैंने सन्तों से सुनी है, ग्रन्थो से पढ़ी हैं, बहुत गहरी बात है, मेरे को एक प्रकार से अच्छी लगती है, इस वास्ते इसका इतना मनन और विवेचन करता हूं। तो, इतनी गहरी बात है यह। अतः इस बात को समझने की आप कृपा करें कि भगवान् के साथ हम प्रेम करते हैं या भगवान् के प्रभाव को समझ कर प्रेम करते हैं ? उस (प्रभाव की) तरफ दृष्टि न रख कर के (यानी प्रभाव का अभाव नही कहता हू, उनका प्रभाव तो अपार-असीम है। आप दृष्टि न रखो तो भी प्रभाव वैसा ही रहेगा। वह तो प्रभाव रहेगा ही।) केवल भगवान् हमे प्यारे लगे—यह बहुत गहरी बात है।

मैंने दृष्टांत दिया कि जैसे एक करोड़पति आदमी है, अरबपति आदमी है, वह सत्संग मे आता है, तो हमारे को बहुत अच्छा लगता है। हमारी वृत्ति उधर जाती है उस धनी आदमी की तरफ और कहते है—आइये, आइये, ऐसा आदर का भाव होता है। इसमे जो महत्व दीखता है वह धन

का है या उसके खुद का है, या ऐश्वर्य का है, यह सोचना है। यदि उसके पास धन न रहे, धन चला जाय, वह भिखारी बन जाय तो सब दुतकारते है, तिरस्कार करते है, निन्दा करते हैं, कोइ तो कह भी देता है कि मेरे पैसे भी नहीं दिये—उस समय उसके आने पर हम उसका वैसा ही आदर करते हैं क्या; जिस समय वह करोड़पति-अरबपति था ? जितना उस समय आदर करते थे, उतना आदर करते हैं क्या ? यदि नही करते हैं तो हमारा स्नेह धन पर ही हुआ व्यक्ति पर कहां हुआ ! व्यक्ति का प्रभाव तो तब समझा जाय जब सब तिरस्कार करें, उसको कोढ निकल आवे, जिसको छूने मात्र से रोग हो जाय फिर भी उसके साथ प्रेम की बात की जाय। उससे बातचीत करने से लोग तुम्हारे साथ घृणा करेंगे, तुम्हे दुत्कारेंगे पदच्युत करेंगे, ऐसा होने पर भी हमारा वही भाव रहे कि आईये, आईये; आदर सहित यह भीतर का भाव रहे तो हमारा प्रेम व्यक्ति के साथ हुआ पर मनुष्य का धन तो चला जाता है, भगवान का प्रभाव जाता नहीं। "धन चला जाता है" यह (बात) मैंने प्रभाव की तरफ ध्यान न देकर भगवान् की तरफ ध्यान दिलाने के लिए दृष्टांत दिया है। भगवान् का प्रभाव थोडे ही कभी चला जाता हैं, वह तो नित्य निरन्तर है। हो पर हमारी दृष्टि किधर है ? इस पर ध्यान देना है—हम किसी गुण विद्या को लेकर यदि किसी विद्वान को मानते हैं तो विद्वान् को मानते नहीं हम; गुणा और विद्या को मानते हैं, किसी पद पर नियुक्ति से आदर करते हैं, प्रेम करते हैं, तो वह आदर और प्रेम उस पद का है, उस व्यक्ति से नहीं है। दीखता तो है कि उस व्यक्ति से स्नेह करते हैं। व्यक्ति से स्नेह है, ऐसा ही दीखता है, पर वास्तव मे उस व्यक्ति से वह प्रेम नहीं है। इसी प्रकार शरणागति मे रहस्य की बात छिपी हुई बात, जिसकी तरफ ध्यान नही जाता वह रहस्य की बात यह है कि "भगवान् के प्रभाव की तरफ हमारी दृष्टि न होकर केवल भगवान् की तरफ हमारी दृष्टि रहे।

जैसे यशोदा मैया अपने लाला को दूध पिलाती है, प्यार करती है, हृदय से लगाती है, स्नेह करती है परन्तु भगवान् के प्रभाव की तरफ उसकी दृष्टि है ही नहीं। भगवान् का प्रभाव चला नहीं गया कहीं, परन्तु मैया की दृष्टि लाला पर है। घर में कोई आजाय महाराज ! तो मैया कहती है कि हमारे लाला को आशीर्वाद दे दो। यह मेरा लाला रोवे नहीं। प्रसन्न रहे हरदम। कोई रोग नहीं हो। कोई बाधा नहीं हो"—ऐसा आशीर्वाद दे दो, मैया कहती है। तो क्या ऐसा करने से भगवान् का प्रभाव कहीं चला गया। प्रभाव गया नहीं, प्रभाव तो वहीं है, पर वह प्रभाव होते हुए भी यशोदा मैया को दृष्टि प्रभाव की तरफ है ही नहीं। इतनी ही बात नहीं, मैया को प्रभाव सुहाता ही नहीं है। लाला इतना प्यारा लगता है कि उस (कृष्ण) के प्रभाव से घृणा है, एक तरह से। अब थोड़ा ध्यान दें। भगवान् श्री-कृष्णचन्द्र महाराज ने अपने मुख में ब्रह्माण्ड दिखा दिया। अन्त सृष्टि दिखाई मुख मे। (यशोदा माता को भी दिखाई और कौशल्या माता को भी दिखाई।) वह जो ब्राह्माण्ड दिखाया मुख मे, उसमें थोड़ा सा आप ध्यान दें। यह अनन्त सृष्टि, अनन्त ब्रह्माण्ड परमात्मा के किसी एक अंश में है। भागवत् मे ब्रह्मा जी ने स्तुति करते हुए कहा कि आपके एक रोमकूप मे कई ब्रह्माण्ड घूमते है—इतना बड़ा ब्रह्माण्ड जिसमें एक चन्द्रमा एक सूर्य और एक पृथ्वी है ऐसे कई ब्रह्माण्ड एक रोमकूप में घूमते हैं। वे ऐसे घूमते हैं जैसे सूर्य उदय होने पर दरवाजे के छेद मे से सूर्य की एक किरण आती है और उसमे जैसे छोटे-छोटे राजःकण घूमते हैं, ऐसे आपके एक एक रोमकूप मे ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड, (पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र, और आकाश के सहित जो एक ब्रह्माण्ड होता है वह) घूमते हैं। इतने वडे है भगवान्। भगवान् तो इतने वडे है। और उसमे भूमण्डल एक छोटा सा है। उस भू—मण्डल मे आपका हिन्दुस्तान उसमे फिर एक वृज—मण्डल। वृज—मण्डल मे एक गोकुल वृज के गोकुल मे एक गाँव—नन्दगाँव। उस नन्दगांव मे एक नन्द जी का घर। घर के कोने मे एक कमरा और उस कमरे की छोटी सी जगह मे बैठी हुई यशोदा

मैया। उस माता की गोद के अंश मे, लाला भगवान कृष्ण हैं सोया हुआ। वह लाला है उसका भी मुख कितना छोटा ? उस मुख मे अनन्त ब्रम्हाण्ड दीखते हैं! लाला छोटा सा बनने पर भी उसका प्रभाव चला गया क्या ? अनन्त ब्रह्माण्ड दीख रहे हैं उसके मुख में प्रत्यक्ष। मां देखकर डर जाती है। उस मुख मे बृज भी दीखता है। मैया भी दीखती है। गायें भी दीखती हैं। नन्दबाबा भी दीखते हैं। और सारी सृष्टि दीखती है। तो फिर मैया कहती है मेरे लाला को क्या हो गया झाड़ा डलाओ, लाला को क्या हो गया ? भगवान का वर्णन करते हुए किसी कवि ने कहा है कि—

जा बृजरज के पास से मुक्ति मुक्त ह्वै जाय।
वा बृज बृज राज को गोपी डगर डगर बुहार।

जिस रज मे लाला खेलते हैं, उनकी रज में सब तरह की मुक्तियां मिलती हैं। उस रज को कूड़ा कर्कट समझ कर गोपिकायें बाहर फेंक देती है। तो प्रभाव की वहां बाधा कहां लगी ? वहाँ तो लाला का आदर है। लाला का आदर जिसके हृदय में होता है वही सच्चा प्रेमी होता है। हमारी कोई कामना नहीं, चाहना नहीं, तभी हमारी दृष्टि केवल भगवान् की तरफ होती है। लाला से हम क्या चाहे ? छोटा सा है वह। हे गोवर्धन महाराज! आप हमारे लाला की रक्षा करें। पर्वत रक्षा करता है। वह यशोदा चाहे तो उसे बाँध देबै, ऊखल से मैया भगवान् को बाँधना चाहती हैं तो भगवान् बँध जाते हैं। किस बात को लेकर ? कि वह भगवान् से स्नेह ही करती है।

प्रभाव से प्रेम करने वाले को मुक्ति मिल जायेगी, ऐश्वर्य मिल जायेगा, बड़ा भारी पद मिल जायेगा।

ये सब मिल जायेगा भगवान् के प्रभाव की तरफ देखने से। परन्तु भगवान् को बाँध नहीं सकते आप। प्रेमी भक्त ही भगवान् को बाँध सकता है। ऐसा प्रेमी भक्त भगवान् को नीलाम लगा दे कि बिक्री इतने मे होती है तो भगवान् बिक जायेगें। वे देखते हैं कि वह मेरे से प्रेम करता है मेरे प्रभाव की ओर देखता

तक नहीं। तो कितना आदर है भगवान् के मन मे उनका। अतः 'प्रभाव की तरफ देखना है' वह 'हमारी कामना' यानी हमे कुछ पाना है यह सिद्ध करता है। हमारा महत्व उन काम्य पदार्थ की तरफ है। इस वास्ते हम प्रभाव की ओर देखते है। हमारे मे कामना है तब तक हम प्रभाव को देखते है। अतः हममे कामना न रहे तो भगवान् के ऐश्वर्य की तरफ हमारी दृष्टि नहीं होगी। **भगवान् की ओर देखेंगे तो भगवान् की शरण हो जायेंगे। भगवान् के अपने हो जायेंगे। हम भगवान् के और भगवान् हमारे होंगे।**

अब विचार करो, पूतना राक्षसी है। वह जहर लगाकर के स्तन मुख मे देती है, उसको भी भगवान् ने माता की गति दे दी।

"पद—ऐ लाल जी रो मुख देखण ने आई"

अन्त मे कहते हैं

"जसुमत की गति पाई"

जसुमति मैया की गति मिली उसको। जसोदा को जो मुक्ति मिले, वह मुक्ति तो पूतना को मिल गई। वह जहर देती है मुख मे। और यह प्यार करती है, रोजाना दूध पिलाती है, खिलाती है। यदि यशोदा को भी भगवान मुक्ति दे दें तो भगवान् ने क्या दे दिया ? अनन्त जीवों को मुक्ति देने वाले भगवान अधीन हो गये मैया के। लाठी ले के दिखावे तो रोने लग जावे डर कर। इतने वशीभूत क्यो हो गये ? मां तो ऐश्वर्य की तरफ ध्यान ही नहीं देती ! मुक्ति चाहे तो महाराज मुक्ति दे दें, पर कुछ भी न चाहे तो क्या करे ? अपने आप को ही दे देते हैं।

अहो बकीयं स्तन कालकुटं

जिघांसयापाययदप्य साध्वी लेभेगति धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा

दयालु शरण ब्रजेम। (श्री भागवत् ३।२।२३)

वह असाध्वी बकासुर की बहन 'पूतना' स्तन काल कूटं, काल कूट जहर लगाकर स्तन मुँह मे दिया। "अहौ बकीयं ततोऽन्यं

"स्तन कालकूटं जिघांसया"—उसका विनाश करने के लिए आई। "ले भेगतिं धात्र्युचितां"—जो धात्री को गति देनी चाहिए थी वह पूतना को दे दी। "कं वादयालु शरणं ब्रजेम"—ऐसा दयालु कौन मिलेगा, जिसकी शरण में हम जायें। इस बात को सुन करके 'शुकदेव जी'—जो जन्मते ही चले गये थे। जिनके व्यासजो पिताजी पीछे-पीछे जाते हैं बुलाने को, आवाज देते हैं पुत्र ! पुत्र ! "पुत्रेति तन्मतया तरवोऽभिने (श्री मद्भागवत् महात्मा-२) महाराज, उत्तर में वृक्ष बोलते हैं सामने से। वे बोले नहीं, चले गये। उस शुकदेव मुनी ने जब ब्रह्मचारियों के द्वारा यह श्लोक सुना तो पूछा कि यह श्लोक कहाँ का है ? उन्होंने कहा—भागवत का है। व्यास जी के पास हम पढ़ते हैं तो बिना बुलाये गरज करके वही शुकदेव जी वापस आये और व्यास जी से भागवत पढ़ा।

य प्रव्रजन्त मनुपेतमपेत कृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव। पुत्रेति तन्मय तया तरवो ऽभिने दुस्तं सर्वभूत हृदय मुनि मानते ऽस्मि ॥ (श्री मद्भागवत् महात्म्य-२)

जिनका जनेऊ भी नहीं हुआ था जिनके पीछे पिताजी पुत्र-पुत्र करते बन में गये, पर वे न आये। भागवत की दयालुता के श्लोक को सुनकर वे भागवत की गरज करते हैं, आकर भागवत पढ़ते हैं, बताइये। ऐसे वे दयालु हैं। जहर देने वालो को अमृत दे दिया।

भगवान् के प्रभुत्व की तरफ देखें तो भगवान् क्या है ? भगवान् रहे ही नहीं वे। भगवान् को मैं प्रभाव रहित नहीं कहता। भगवान को मैं प्रभाव रहित कहता ही नहीं हूँ, पर हमारी दृष्टि किधर है, इधर ख्याल करने को कहता है। आप इतने बैठे है, क्षमा करेंगे, बुरा नहीं मानेंगे। मेरे से बातें सुनने को मिलती हैं तब तो आप आते हो। बात मेरे से एक मिले नहीं। शरीर मे हो जाय कोढ़। सब घृणा करें। रहने के लिए मुझे स्थान न दें कोई। रोटी भी न दे। पहनने के लिये कपड़ा भी न दे। उस समय भी आप इतने के इतने आकर के हाजिर हो जाओ तो मेरे साथ आप स्नेह करते हैं। नहीं तो मेरी बातों से स्नेह करते हैं। मेरे से स्नेह नहीं

करते तो, मेरे को वश मे कैसे कर सकते हैं। आप की तरफ मेरी विद्या की, मेरी योग्यता की, मेरे ज्ञान की, उस तरफ आप ध्यान न देकर के, केवल मेरी तरफ दें, तो मेरे से स्नेह हुआ। जरा ध्यान दीजिये।

भगवान् की शरणागति का रहस्य बताया कि उसके प्रभाव को तरफ दृष्टि नहीं। और हमारे कोई कामना नहीं, केवल भगवान् हमारे और हम भगवान् के केवल ऐसा भाव होता है। यह शरणागति का रहस्य है। अपनी कोई कामना नहीं, उनके ऐश्वर्य की तरफ देखें ही नही। केवल उनके साथ अपनापन का भाव ही सच्ची शरणागति है। यदि हम मुक्ति चाहते है तो इतनी ऊँची बात करने के कैसे अधिकारी हैं फिर भी हम अधिकारी हैं। कैसे हमें तुच्छ-तुच्छ चीजें भी बड़ी दीखती हैं और यह तो सबसे बड़ी है। इसकी प्राप्ति की चाहना भी एक प्रकार से निष्कामना ही है। कैसे ? वे आदर करने से, नमस्कार करने से राजी हो जाय। यह निष्कामता कितनी ऊँची है।

भाई ! यह ! 'शरणागति रहस्य' तो ऐसी विलक्षण बात हैकि भगवान् की भी कोई बिक्री कर सकता है। चाहे तो भगवान् से कार्य ले सकता है। परन्तु कब ? केवल भगवान् के साथ ही उसका प्रेम हो जब। वह उनके शरण हुआ है। वह भगवान् के प्रभाव के शरण नहीं।

प्र०: भगवान् चले गये। अब भगवान् मे ऐसा प्रेम कैसे हो।

उत्तरः अब थोड़ी सी बात बता दें। आप अपने कुटुम्ब मे हो, वे आपका आदर करते हैं तो आप उनके साथ स्नेह करते हैं तो वास्तव मे आप कुटुम्ब के प्रेमी नहीं कुटुम्ब के प्रेमी तो तब होते कि आपकी स्त्री है, आपका बेटा है, बिलकुल आपका तिरस्कार करें, एक बात न मानें और आपको दुःख दें, गाली दें, सेवा तो दूर रही, दुःख और कष्ट देवें, फिर भी आपका यह विचार हो की मेरी स्त्री है; मैं ब्याह कर लाया हूँ; ये चाहे कुछ भी करे, चाहे डंडा ही मारे, मेरा तो कर्त्तव्य है, इसका पालन पोषण करना। ऐसा करके उसका पालन-पोषण करें। जैसे पतिव्रता पति से स्नेह करे, ऐसे ही कुटुम्ब से स्नेह करो, तो आपका भगवान् में प्रेम हो जाय।

परिवार के ऐसे स्नेही बन जाँय, तब भगवान के प्रेम के अधिकारी हैं। नहीं तो आप लोलुप है। आपकी मर्जी, आपकी पसन्द वे करते हैं और आपतो उनकी मर्जी उनकी पसन्द ही करते हैं, यह तो कुत्ता-कुत्ती का सम्बन्ध है। यह कोई पति-पत्नि का सम्बन्ध है क्या? पति-पत्नी का सम्बन्ध तो कर्म को लेकर के है इसके पिता ने कन्यादान किया और मैंने स्वीकार किया। कैसी ही कर्कशा हो, कैसी ही दुखः देने वाली हो, किन्तु मेरी प्रतिज्ञा है अग्नि की, ब्राह्मणों की साक्षी मे अग्नि के समक्ष मैंने इसको पत्नि के रूप में स्वीकार किया है, उस नाते पत्नि का पालन मेरे को करना है, सब तरह से। मेरे को सुख न मिले, ऐसा सुख इसको देना है। जैसे मेरे को रोटी नहीं मिले, वैसी उसको दे। मेरे को कपड़ा न मिले, वह कपडा उसे देवै। मेरे को मकान न मिल सके, ऐसा मकान इनको देना है। मेरी दृष्टि मे बढ़िया से बढ़िया चीज उसको देना मेरा कर्त्तव्य है। इससे सम्पूर्ण कुटुम्ब को छोड़ा है। मां-बाप को छोड़ा है। भाई भौजाई को छोड़ा है। भतीजी भतीजो को छोड़ा है। तू तो बाप की गद्दी पर बैठा है, ऐसे ही। इस वास्ते इसकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है। इस प्रकार स्नेह करेगा, तब वह मेरी इस बात (शरणागति के रहस्य) को समझने लायक होगा। सुख देने पर, अच्छी लगती है और दुख देने पर बुरी लगे तो आप उसके पति थोडे ही हो। आप तो सुख के भोगी हो। वेश्या सुख देगी तो वहां फंस जाओगे। यह कोई धर्म को लेकर थोडे ही है, त्याग को लेकर थोड़े ही है? यह तो सुख भोग के लिए है। यह प्रेमी नहीं है यह तो स्वार्थ है। दुःख कष्ट की परवाह न करके अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। वही सच्चा स्नेही है। वही सच्चा प्रेमी है।

—:o:—

(शरणागति) 'ब'

प्र०—कल आपने बताया कि भगवान् के प्रभाव की ओर देखना अपनी कामना से ही होता है। हमारे में कामना है तब हम भगवान् के प्रभाव को देखते हैं। हमारे में कामना न रहे, हम भगवान् के ऐश्वर्य की तरफ दृष्टि न रखें, केवल भगवान् की तरफ देखें, तो हम भगवान के ही हो जायेंगे। हम भगवान् के और भगवान् हमारे हो जायेंगे। आज फिर उसी विषय पर विस्तार से समझने कृपा करें।

जीव मात्र—अपने से जबरदस्त को मानता है। मनुष्य भी अपने से बड़े को मानता है—विद्या मे, बुद्धि मे, बल मे, शास्त्र में, योग्यता मे राज्य में, वैभव मे किसी न किसी को बड़ा मानता है। पशु-पक्षी भी एक-एक से डरते है और एक-एक को बड़ा मानते हैं। ये कायदा है। बड़ा माननेवाले को बड़ा मानते हैं, केवल इतना ही नहीं, उसका सहारा भी लेते हैं। बड़े से अपनी रक्षा चाहते हैं। हमारे से बड़ा हमारा नाश करदे, ऐसा कोई नहीं चाहता अपितु उनसे अपनी रक्षा चाहते हैं।

अपने से बड़े को मानते हैं ईश्वर वादी हो गये। इससे सिद्ध क्या हुआ? इससे यह सिद्ध हुआ कि सब के सब भक्त भगवान् को बड़ा मानते हैं। साधक-उसी को बड़ा मानता है, जिससे कल्याण हो। अतः आस्तिक तो ईश्वर वादी है ही पर नास्तिक भी किसी न किसी को जब बड़ा मानता है तो वह भी ईश्वरावद को स्वीकार करता है, क्यो कि एक-एक से बड़ा है सबसे बड़े भगवान है। कोई किसी को भी बड़ा नहीं मानता है, तब वह कह सकता है कि ईश्वरवादी नहीं है। पर ऐसा कब तक नहीं कह सकता जब तक वह किसी को बड़ा मानता है। मां बाप को भी बड़ा मानता है, वह नहीं कह सकता कि मैं ईश्वरवादी नहीं हूं। अपने से बड़ा मानना यह ईश्वरवाद का सिद्धान्त है। और

इसे स्वीकार करने वाला केवल ईश्वरवाद का सिद्धान्त ही स्वीकार नहीं किया, अपितु वह बड़ों से सहायता चाहता है तथा बड़ों का आश्रय भी लेता है। लता रहती है वह भी वृक्ष की सहायता लेती है। एक दूसरे का सहारा लेने की बात स्थावर जीवों मे भीं है और जंगम जीवों में तो है ही। सभी किसी न किसी का सहारा लेते हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ? ईश्वरवाद के सिद्धान्त के सिद्धि हो गई, और शरणागति का सिद्धान्त भी हो गया।

अब, शरण लेता तो है मनुष्य, परंतु जिससे अपना पूरा कल्याण न हो, पूरी रक्षा न हो ऐसी की शरण लेता है। भूत, प्रेत, का सहारा लेता है। धन का सहारा लेता हैं। किसी न किसी नाशवान का सहारा लेता है। भले ही अपूर्ण का सहारा ले पर सहारा लेता तो है ही! सहारा लेने का तो स्वभाव है ही। यह स्वभाव सिद्ध करता हैं कि परमात्मा की शरण लेनी चाहिए, क्योंकि ईश्वरवाद में सर्वोपरि परमात्मा को माना गया है। शरण लेना ही है तो फिर मामूली क्या शरण लेना? छोटे का आश्रय लेने से क्या फायदा होगा? जो सर्वोपरि है उसी की शरण लेना है। उसी की ,शरण होना है। यह सहारा लेना जीव मात्र मे स्वभाव सिद्ध बात है। परन्तु जब तक ईश्वर को शरण नहीं लेता है तब तक कईयों की शरण लेनी पड़ती है। बड़े-बड़े आदमियो की शरण लेनी पड़ती पड़ती है। कुटुम्बियों की शरण लेनी पड़ती है।

खुशामद के लिए ही सही पर शरण तो लेनी ही पड़ती है। आश्रय तो लेना ही पड़ता है और कहता भी है कि आपके बिना हमारा काम नहीं चलेगा, आप हमारा काम कर दी जिए। हम आश्रय लेने आपकी शरण मे आये हैं। ऐसी दशा क्यों हो गयी? भटकता है क्यो? मंगता बनता है क्यो? क्योकि असली (भगवान्की) शरण नहीं हुआ। यदि यह भगवान् की शरण हो जाय तो सदा के लिए निहाल हो जाय, क्यों कि यह भगवान् का अंश है भगवान् का अंश होकर यदि

अन्य की शरण लेता है तो उसकी पूर्ति कैसे होगी ? हैं तो साक्षात् परमात्मा का अंश है और शरण लेता अन्य ऐसे-ऐसो की—जीवों की, पशुओं की, पदार्थो की, तुच्छ ऐश्वर्य वालो की जो स्वयं अपूर्ण हैं तो कभी भी इसको तृप्ति नहीं होगी, शान्ति नहीं होगी, पूर्णता नहीं होगी। पूर्णता कब होगी ? जिसका अंश है उसी का आश्रय ले लें यानी परमात्मा के ही शरण हो जाय तो यह निहाल हो जाय। तो शरणागति तो इसके स्वभाव में है। अब यह स्वीकार करले कि मैं तो परमात्मा का हूँ। तो निहाल हो जाय, और एक बड़ी विचित्र बात है, ध्यान देने की है कि हम तो बड़ो की शरण ले लें परन्तु वे बड़े स्वीकार करलें तब तो ठीक होगा। स्वीकार न करें तो हमारे शरण लेने से क्या होगा ? जैसे कोई करोड़ पति का लड़का बन जाय कह दे कि हम करोड़पति की गोद है। परन्तु करोड़पति न कहे तब तक वह चाहे कितना ही कहे उसकी कौन मानेगा ? उसकी कोई इज्जत नहीं और करोड़पति कहदे कि यह हमारे मुनीम हैं और हमारे यहाँ काम करते है तो उस मुनीम की इज्जत हो जाती है कि यह अमुक सेठ के मुनीम हैं तो यह सेठके स्वीकार करने से होगा। ऐसेही हम भगवान के शरण हो जाँय तो भगवान के स्वीकार करने से होगा ? वे स्वीकार न करें, केवल हम ही कहे कि हम शरण हैं भगवान को तो फिर क्या कीमत है ? यह प्रश्न है। इसका सामाधान यह है कि भगवान् तो सबको मेरा कहते ही हैं कि

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता १५।७)
सब मम प्रिय सब मम उपजाये ॥ (मानस ७।८५।४)

सब मेरे हैं।

भगवान् ने तो कभी, किसी को भी अपना मानने से इंकार किया ही नहीं। हमने तो कभी ग्रन्थ मे देखा नहीं। कभी कहीं सन्तों से सुना नहीं कि भगवान शरणागत का त्याग करते हैं। अपितु उनकी तो ये बात सुनी है कि—

"शरणागत कहुं जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि। (मानस ५।४३)

विभीषण जब शरण गया तो, सुग्रीव ने कहा कि महाराज

"जानि न जाइ निशाचर माया" **मानस ५।४२।६**

"कामरूप केहि कारण आया"

राक्षसो इनकी माया समझ मे नहीं आती। विभीषण किस कारण से आया पता नहीं। शायद हमारा भेद लेने के लिये आया है। अतः मेरे मत से तो इसको बाँध लेना चाहिए पर भगवान ने देखा कि विभीषण आ गया और कहता है कि "त्राहि-त्राहि आरति हरण, शरण सुखद रघुवीर," **श्रवण सुजस सुनि आयऊ प्रभु भंजन भवभीर।** (मानस ५।४५ दोहा)

वह कहता है कि आप तो 'प्रभु भंजन भव भीर' ऐसे है और मैं त्राहि-त्राहि पुकारता हुआ शरण सुखद रघुवीर, आपकी शरण हो गया। विभीषण शरणागत हो गया। तो भगवान ने कहा कि शरणागत का मै त्याग नहीं करूगा चाहे जो हो। सुग्रीव ने ज्यदा कहा तो भगवान बोले **'सखा नीति तुम्ह निकि बिचारी'** (मानस ५।४२।८)

प्यारे मित्र! नीति तुम्हारी बहुत अच्छी है। तुम्हने नीति बहुत अच्छो कही राजा जो ठहरे। परन्तु 'नीति' ही 'नीति' तो देखी भैया! नीयत तक नहीं पहुँचे, हां? "नीति तुम नीक बिचारी" पर **"ममपन शरणागत भयहारी॥"** (मानस ५।४२।८)

मेरा तो प्रण है कि जो शरण मे आ जाय **"सकृदेव प्रपन्नाय और तवास्मीति च याचते"** (वाल्मीक रामायण ६।१८।३३) एक बार भी कहदे हे नाथ मैं आपकी शरण हूँ तो मैं "अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम" सम्पूर्ण प्राणिमात्र से उसको निर्भय कर देता हूँ। **"ममपन शरणागत भयहारी"**

भगवान के शरण होने पर भगवान् त्याग नहीं सकते। शरण नहीं होने पर भी भगवान कहते हैं कि सभो मेरे हैं। शरण होने पर जो त्याग करता है उसके लिये भगवान कहते हैं "ते नर पाँवर पापमय" शरणागत का त्याग करने वाला इतना पावर और पापमय है जिसको देखने मात्र से पाप

लगता है। स्वयं ऐसा कहने वाले शरणागत का कैसे त्याग कर सकते हैं? शरणागत का त्याग कभी नहीं कर सकते। भगवान् कहते हैं कि मैंने तो सबका जिम्मा ले रखा है, सबका ठेका ले रखा है, सबका प्रबंध कर रखा है। जितने जीव हैं और उनके जितने कर्म हैं उनसम्पूर्ण कर्मों का ठीक प्रवध कर रखा है। **सुहृदय सर्व भूतानाम्** (गीता ५।२९)

भगवान् कहते हैं कि मैं प्राणिमात्र का सुहृद हूं। जो प्राणिमात्रके सुहृद है वे शरण लेने से इन्कार कैसे कर सकते हैं? शरणागत का त्याग कैसे करेंगे? अतः भगवान के शरण हो जाय।

शरण होना क्या है? नाथ! मैं आपके शरण हूँ ऐसा कह दें और ऐसा ही मान लें। मैं भगवान् का ही हूं केवल ऐसा मानले तो फिर की भी जरूरत नहीं हैं। मैं तो कभी कभी विनोद मे कहा करता हूँ कि असली शरण होना क्या है? शरण कभी नहीं होगे। कभी शरण होना ही नहीं, असली शरण है कैसे शरण होने का अर्थ होता है कि अव मैं शरण हूँ पहले शरण नहीं था। पर वास्तव में शरण होऊं क्या, मैं तो हूं ही उन्हींका जैसे वच्चा कह देता है माँ से कि मैं तेरा वेटा नहीं बनूंगा। तो माँ हसती है। भोला है। वेटा बनेगा क्या मेरा समझती है कि अव्र वनता है क्या? है ही तू मेरा वेटा। ऐसे ही जीवमात्र तो भगवान् के हैं ही। इन वास्ते शरण होवें क्या, हम तो शरण हैं ही। ऐसा मानें हम तो भगवान् के हैं ही ऐसा मानें तो भगवान् इन्कार कैसे कर सकते हैं? तो भगवान् के शरण होकर निर्भय निश्चित, निशोक और निशोक हो जाय बस विश्वास करके भगवान् के शरण हो जाय शरण होने के वाद मे वह स्वतः निर्भय हो जाता है फिर उसे भय किस बात का? जो सबसे बड़े हैं, वे हमारे हैं, हम उनके हैं। फिर कभी भय नहीं होगा। ऐसे निर्भय हो जाय। और निश्चत हो जाय। शरणागत की चिन्ता चली जाती है। चिन्ता किस वात की।

"का चिन्ता यदि जीवने, विश्वंभरो दीयते"

भगवान् का नाम विश्वम्भर है, तो मेरी मेरे को चिन्ता क्या है? विश्वमात्र का भरण-पोषण करते हैं वे मेरे हैं तो फिर मौज ही मौज है,

चिन्ता किस बात को ? भगवान् की शरण होने के बाद भय नहीं रहता और शोक भी नहीं होता। चिन्ता और शोक में फर्क है। अब कैसे करेंगे ? क्या करेंगे। क्या होगा ? यह चिन्ता है; और चीज चली जाय, या परिवार मे कोई मर जाय तो उसका शोक होता है। जैसे—धन चला जाय, परिवार मे कोई मर जाय तो शोक होता है। भगवान् हैं तो अब शोक चिन्ता क्यों करें। तो, फिर चिन्ता नहीं होती। शोक नहीं होता। और शंका नहीं रहती कि क्या करें, कैसे करें, क्या होगा, क्या जाने, क्या नहीं जाने, क्या माने, क्या नहीं माने ? तो, भगवान् के शरण होने पर चिन्ता भय, शोक और शंका ये सब मिट जाती हैं। भीतर से भगवान का जितना-जितना आश्रय ले लें, उतना-उतना यह हो ही जाता है और यह नहीं होता है तो उसको विचार करना चाहिए।

ध्यान देना—शरण तो हम हो गये, और भय मिटा नहीं, शंका मिटी नहीं, चिन्ता मिटी नहीं, दुःख मिटा नहीं तो इस पर विचार करना पडेगा। ध्यान देना कि कैसे विचार करें ? हम भगवान के शरण हो गये तो दुःख, शोक, शंका आदि कैसे रह गये ? चिन्ता कैसे रह गयी ? भय क्यों रह गया ? ऐसे उल्टा नहीं सोचना, कि 'भय रह गया तो हम शरण नहीं हुये।' उल्टा क्यों सोचो ? सुल्टा ही सोचो। हम भगवान् के हैं तो भय कैसे ? अब, भय नहीं है हमारे तो, चिन्ता रही नहीं, शंका रही नहीं क्योंकि भय-शोक-चिन्ता ये आगन्तुक दोष थे और अब हमने भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध को पहिचान लिया। भगवान् का संबंध तो नित्य है और ये दोष है आगन्तुक स्वयं विचार करो हरदम भय कहां रहता है ? हरदम चिन्ता कहां रहती है ? परन्तु यह जीव भगवान् का हरदम रहता है। किसी क्षण भी भगवान् का न हो, यह असम्भव बात है। यह जाने, न जाने, माने, न माने, पर भगवान् का तो रहता ही है। बेटा मां का नहीं रहेगा क्या ? वह तो निरन्तर है

हो ! किन्तु भय, शोक, चिन्ता आदि ये आने जाने वाले दोष है । और आने जाने वाले दोषो के कारण नित्य संबध को अस्वीकार करें, ये ठीक होगा कैसे ? भगवान् तो हमारे हैं ही । इस वास्ते इन दोषों को हटा दें । 'यह कहां से आ गया ? ऐसे उन दोषों को हटा दें ।

हम कहते तो हैं परन्तु दोष आ हो जाता है । क्या करें ? समाधान—शरण भगवान् के हो गये तो अब दोष आ तो सकता ही नहीं । यह भय आया नहीं है अपितु कहीं पहले का माना हुआ था वह भय निकल रहा है बेचारा । यह जाता हुआ दीखता है । भय तो आ ही नहीं सकता । भय कैसे आ सकता है ? भगवान की शरण हूं मैं ।

भगवान् के समान भी कोई है ही नहीं, अधिक तो होगा ही कैसे ? "न त्वत्समोऽस्त्य भ्यधिक कुतोन्यो" (गीता ११/४३) ऐसे भगवान् के रहते हमारे भय कोई है ही नहीं । चिन्ता कोई है ही नहीं । भगवान के पुकारते ही भय मिट जाता है । जहाँ भगवान् को पुकारा भय, चिन्ता शोक सब गये । इस वास्ते भगवान् के शरण होना सरल है । अतः हम 'भगवान् के है' ऐसा मान लें ।

भगवान् के तो हैं ही हम सब । क्योंकि भाई ! छोटी मोटी कोई चीज होती है उसका भी कोई मालिक होता है, तो इस विश्व का भी कोई मालिक होगा ? छोटी सी चीज का भी मालिक होता है, तो इतना बड़ा ब्रह्माण्ड है उसका कोई मालिक नहीं है क्या ? यह कभी हो सकता है ? मालिक तो है ही । वह सबका मालिक है तो, हमारा नहीं है क्या ? सबका है तो हमारा हो ही गया । जिसकी चीज है वह अपने आप ही रक्षा करता है अपनी वस्तु की । कहावत तो यहां तक आती है कि जहर का पौधा भी लगाकर भला आदमी उखाड़ता नहीं क्योंकि अपना लगाया हुआ है । तो, मैं कैसा भी हूँ, उनका ही हूँ, प्रभु का ही हूं, जैसा भी हूँ । इस वास्ते चिन्ता नहीं करें । वह परमात्मा है और हमारा है । फिर चिन्ता कैसी ?

जितना जो कुछ प्रभाव है, "यद्यद्विभूतिमत्सत्वं" (गीता १०/४१) जहां तेज, बल, बुद्धि दीखता है, भगवान् के तेज के अंश से उत्पन्न होने

वाले हैं। ऐसे भगवान् की शरण हैं हम। छोटा बच्चा माँ को बहुत प्यारा लगता है। बच्चा भी 'मां', 'माँ' करता है। इस प्रकार हम भी हर समय भगवान् का नाम लेते रहें। फिर भगवान् रूपी माँ सब प्रकार से हमारी रक्षा करेगी। गीता का उपसंहार भी इसी में हुआ है।

मामेकं शरणव्रजे (गीता १०/६६)

बस, अब जरूरत नहीं किसी बात की भगवान् कहते हैं सब पापों से मुक्त मैं कर दूंगा। निश्चिन्त होने का यह (शरणागति) असली उपाय है। कैसी बढ़िया बात है? स्वभाव हमारा है ही आश्रय लेने का केवल उसका सदुपयोग करें तो सदा के लिए निहाल हो जायँ।



(६) शरणागति से उद्धार

यह बात प्रत्यक्ष है कि अभी जो यह शरीर है यह जा रहा है। हम जिस काम के लिए आये थे, वह कब करेंगे? खाना, पीना, सोना, आराम करना, ये पक्षी-पशुओं मे भी होता है, वृक्षो मे भी होता है, स्थावर जगम जितने भी प्राणी हैं, उन सभी मे होता है। उसी की तरह यह मनुष्य शरीर बीत गया तो मनुष्य जन्म की सफलता क्या रही? पशु-पक्षी को पता नहीं है कि उम्र जा रही है, मौत आ रही है, क्या करना है, आगे क्या होगा? पर हमे तो विवेक दृष्टि है विवेक होते हुए भी उस तरफ से आँख मीच रखी है, एक तरफ से यह एक बड़ी भारी भूल है। सोचना चाहिए कि यहाँ कितने दिन रहना है? वैसे, आज बहुत से भाई यहां आये हैं; वे सोचते है कि कुछ समय बाद हमे वापस जाना है। इसी तरह से हम लोग इस मनुष्य शरीर मे आये हैं तो इसमे यह रहेगा क्या? १०० वर्षों के भीतर ही भीतर यह पैदा हुआ है और १०० वर्षों के बाद यह रहेगा नहीं। पहले था नहीं और आगे रहेगा नहीं। जब यह शरीर ही नहीं रहेगा तब इसके कुटुँबी हैं, साथी हैं, धन-सम्पत्ति-वैभव आदि हैं कैसे रहेंगे? ये नहीं रहेंगे, तो फिर इसके भरोसे निश्चिन्त कैसे बैठे हैं? यह बात हरएक को सोचने की है। केवल इतना सा विचार हो जाय कि यहाँ स्थायित्व नहीं है, इसलिए आगे का काम अपने को करना है। यहां के काम जो बाकी रह जायेंगे वे तो पीछे जो लड़का, लड़की रहेंगे, वे कर लेंगे। और वे न भी कर लेंगे तो आपके कोई बाधा नहीं, एक राज-स्थानी कहावत है कि "आप मुए जग परले"। इसलिए कर लेंगे तो क्या, नहीं करेंगे तो क्या? पर अपना कल्याण नहीं किया तो, यहाँ क्यों आये? यह तो खास अपना काम है। विचार करो कि हम क्या करें? यह विचार होता रहे कि हम क्या करें? ऐसा विचार आते ही मनुष्य अपने मे एक असामर्थ्य पाता है। "क्या करू? आगे का पता कुछ है नहीं। कल का कुछ पता है नहीं।" इस प्रकार अपने में निर्बलता का अनुभव करते हैं। निर्बलता को जहाँ अनुभव किया, वहाँ बलवान्

का आश्रय लिया। हम कुछ नहीं कर सकते हैं, कोई बात नहीं; किन्तु भगवान् का नाम तो ले ही सकते हैं, राम-राम-राम-राम······। तो, भगवान् का नाम लें। नाम मे लग जायें; रात और दिन। अब जो भाई जहाँ से आयें हैं, बस, किसी की बात सुनें नहीं, केवल नाम जपने लग जाय काम कर दें, सेवा कर दें और दूजो बात करे हो नहीं जैसे-संसार के लोग जो होते हैं, यदि उनका लोभ सिद्ध नहीं होता वे भी बात नहीं करते हैं। आप जो पारमार्थिक बात सुनते हैं, यदि चाहो तो सदा के लिये नाम जप रूपी पूंजी का संग्रह कर सकते हो। इस पूंजी के संग्रह मे भी उतनी ही सावधानी रखें जितनी कि यहां के धन के संग्रह मे रखनी होती है। खेती करने वाले रातों जगते है जबकि उन्हे यह भी मालूम नहीं कि लाभ होगा कि नहीं? बताओ? थोड़ी सी, छोटी सी पूंजी के लिये कितना प्रयत्न करना पड़ता है उन्हे। पर हमें अपने लिये विचार ही नहीं। हम पारमार्थिक बातें सुनते हैं सदा के लिये जन्म-मरण मिट जाय इसलिए 'सदा के लिये जन्म-मरण मिट जाय' ऐसा महान् कार्य है यह इसके लिये हम कितना उद्योग करते है, कितने सजग हैं? जरा विचारो यह अपने खुद का कार्य है; जब भी करेंगे, तब अपने को हीं करना पड़ेगा।

रामानन्द आनन्द घन सुमरया सरसी काज,
चाहे सुमरो काल ही, चाहे सुमरो आज।

चाहे सुमरो ····· इसके सिवाय छुटकारा तो है नहीं।

यह नाशवान् का भरोसा आखिर कब तक? नाशवान का कुछ भरोसा नहीं, कुछ पता नहीं। देखते-देखते कितने आदमी चले गये। बड़े-बुढे चले गये। समान अवस्था वाले चले गये। हमारे सामने जन्म लेकर आने वाले, वे चले गये। इस वास्ते केवल इतनी ही बात सुनना है और सुनते ही लग जाना है कि "क्या करुँ? कहाँ जाऊं? कौन मिले? किससे पूछूँ? अब क्या करना चाहिये मेरे को? यह मन में एक चटपटी लगनी चाहिए। भगवान का नाम लेवें और उसमें लग जावें। जितना जानता है उतना करे। और कोई जनाने वाला हो तो

उसमे बातें जानें कि मुझे क्या करना चाहिये ? कैसे करना चाहिए ? कसे उद्धार हो आदि ।

परिस्थिति सुखदायी और दुखदायी आती है और निकल जाती है; सदा रहती नहीं । फिर, इच्छा करें कि ऐसी और मिल जाय तो कितनी महान मूर्खता है ? परन्तु जो अभी नहीं है, वह परिस्थिति मिल भी जायेगी तो ठहरेगी कितने दिन ? उसके लिए बड़ा उद्योग करते हैं और जो नहीं मिटने वाला आनन्द है उसके लिए प्रयत्न ही नहीं करते, ये बडे दुःख की बात है । हम सुनते हैं, समझते हैं और पढ़ते है, कहते हैं, और सोचते हैं, वे भी यदि इस बात पर गहरा सोचेंगे नहीं, चलेंगे नही, करेंगे नहीं तथा सारे जीवन भर अन्य जीवों की तरह खाने-कमाने मे ही लगे रहे तो फिर उनसे जो सुनते-पढ़ते नहीं, उनसे क्या उम्मीद रखी जा सकती है कि वे चलेंगे ? इस वास्ते हमें सोचना चाहिए।

सन्तों की वाणी में आया है कि कुछ तो जागते है, कुछ सोते हैं, और शेष मुर्दे हैं । जागते कौन हैं ? शरणागत भगवान का होकर भजन करते हैं तो जागते हैं, जो साधन अपने को संसारी मानकर शुभ कार्य करते हैं में लगे हुए हैं वे सोते हुए हैं और जो साधन में ही नही लगे अर्थात् जो केवल संग्रह और भोग मे ही लगे हैं वे मुर्दे हैं। मुर्दे से क्या उम्मीद की जाय ? कम से कम जो सोते हैं, उन्हे तो जगने की चेष्टा करनी चाहिए । न्याय की दृष्टि से भी, वे जागें और विचार करें । मौका है, परन्तु यह जा रहा है तेजी से। मरने का दिन जिसे कोई नहीं चाहता है, वह नजदीक आ रहा है । आप जिस समय आकर बैठे थे, उस समय जितनी उम्र थी, उतनी उम्र अब किसी की नहीं रही है, जितने मिनट कम हो गये, उतनी उम्र कम हो ही गयी । मौत पास आ ही गयी । मौत पास आ गयी क्या, आ रही है निरन्तर, इसमें गफलत नहीं होती है । मौत तो सदा ही सावधान रहती है । अरबो आदमी संसार में है पर है । एक या दो आदमी भी मौत को भूल मे रह गये हों, ऐसा नहीं बडे-बड़े कामों मे भूल हो जाती है पर मौत मे कभी भूल भी नहीं होती। इस वास्ते सावधानी से काम बनाना है । ससार की सेवा करो और अपना काम भी बनाओ ।

काम बनाने की खास युक्ति भगवान् को याद और संसार की सेवा। संसार से प्यार और भगवान् से विमुख रहना बहुत बड़ी हानि है, बड़ी भारी हानि है।

दम आया, न आया खबर क्या है ?

बाहर जाने वाली श्वाँस का क्या भरोसा कि लौट कर आवेगा ही। "हरेनृमि, हरेनृमि, हरे हरे, क्षणे क्षणे-यह शरीर क्षण-क्षण मे क्षीण होता जा रहा है। बाहर जाने वाले श्वाँस का क्या भरोसा है ? यही तो है कि श्वाँस आ गया तो ठीक, नहीं आया तो नहीं आया।

यह सबके बडे भारी अनुभव की बात है कि यह परिस्थिति नहीं रहेगी। आज तक कोई परिस्थिति नहीं रही तो आगे कैसे रह जायेगी ? किसी भी जाति को परिस्थिति एक जैसी रही नहीं, धन=सम्पत्ति, किसी की भी एक जैसी रही नहीं, रहेगी नहीं, रह सकती नहीं। 'नहीं है' वह मिलेगी इसका भी पत्ता नहीं। मिलेगी तो भी रहेगी नहीं। ऐसी हालत में कैसे निश्चिन्त बैठे हैं। यदि सावधान नहीं हुए तो अन्त मे रोना ही रहेगा।

सो परत दुःख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताय।
कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाय ।। (मानस ७/४३)"

फिर रोने से भी कुछ होगा नहीं। रोने से रोना ही रहेगा, और कुछ नहीं होगा। अभी चेत जाय तो काम बना सकते हैं।

एक सज्जन थे। वृद्ध होने पर साधु हुए। और घुमने लग गये। शरीर मे शक्ति कम थी। नींद ज्यादा आवे। तो उन्होने क्या किया कि एक सरोवर के ऊपर एक वृक्ष था, उसके ऊपर जाकर बैठ गये। जब नींद आवे तब गिर जायं पानी मे। फिर निकल घर जाकर वहीं बैठें। बार-बार गिरता और बार-बार वहीं बैठता। बेचारी नींद त्रसित हो गई और बोली 'इस दुष्ट के पास कभी नहीं आऊँगी' सन्त बोले न जाओ तो अच्छी बात है। सच्चे हृदय से भगवान में लगना है, डरने की क्या बात है ?

सच्चा निश्चय कर लिया तो फिर कर ही लिया। सच्चे कामों को भी कई तो विघ्नों के डर से प्रारम्भ ही नहीं करते। और कई प्रारम्भ

करके बाधा आते ही छोड़ बैठते हैं। और जो दृढ़ निश्चयी होते हैं वे तो लग हो जाते हैं। इसमें एक बढ़िया बात बताए। जो ऐसे लग जाता है उसकी भगवान सहायता करते हैं। और जितने सन्त हैं तथा जो अतीत काल में हुए हैं और जो आगे होंगे, उन सबकी सद्भावना हमारे साथ रहेगी और साधारण प्राणियो की भी सद्भावना हमारे साथ रहेगी। प्रकृति हमारे साथ रहेगी। चोर, डाकू, लुटेरे-आदि भी सच्ची लगन से और विश्वास से प्रभु की ओर चलने वाले की सहायता करते हैं। सब संसार आपका हितेच्छु हो जायेगा। धन सम्पत्ति में अपने को लगाओ तो पड़ोसी द्वेषी हो जाय। व्यापार मे लगाओ, तो आगे, (पहिले से) व्यापार करने वाले हैं। वे आपको व्यापार नहीं करने देंगे। और इस विषय मे कोई जानकार मिलेगा तो बडे प्रेम से, बडे शौक से बतावेगा। इतनी इसमें मदद रहती है। केवल हम तैयार हो जायँ तो सब मदद करेंगे। सब के सब मदद करेंगे। हमारे प्रेमी भी मदद करेंगे। द्वेषी भी मदद देंगे। उदासीन भी मदद देंगे। सबके सब द्वारा मदद मिलेगी। नुकसान से नुकसान करने वाला भी वास्तव में मदद करने वाला होता है। परमात्मा की ओर चलने वाले के लिए, दुःख देने वाला, द्वेष करने वाला भी मदद करने वाला होता है।

इस वास्ते इसमे लाभ ही लाभ है, हानि कोई हो ही नहीं सकती। अतः सच्चे हृदय से और निष्काम भाव से इसमे लग जायें।

सच्चे हृदय से भगवान में नहीं लगे तो अन्त समय मे कौन सहायता करेगा ? ज्यादा से ज्यादा प्रेमी होगा तो रो देगा। सहायता कुछ कर सकता नहीं। आदमी के प्राण जाते हों तो कौन-मदद कर सकता है, बताओ ? ऐसी अवस्था मे कोई क्या सहायता करेगा। ज्यादा से ज्यादा स्नेह रहेगा तो रो देगा। लेकिन हमे उसके रोने से क्या मिला ? हमें क्या मदद मिली, क्या सहायता मिली ? ये दशा है संसार की। और यदि हम भजन मे लग जाय तो हमारे द्वारा कितना उपकार होगा ? आप लाखों, करोड़ों, अरबो रुपया लगाकर भी इतना उपकार नहीं कर सकते जितना उपकार आपके भजन करने से दुनिया का हो जायेगा।

गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण से कितने लोगों को लाभ हुआ होगा, और आगे भी कितनों को लाभ होगा। ऐसा लाभ क्या कोई अरबों, खरबों रुपये लगाकर भी इतना उपकार कर सकता है ? सच्चे हृदय से परमात्मा की तरफ चलने वाले से दुनिया के हित का बड़ा भारी काम होता है, अपने हित का भी बहुत बड़ा भारी काम होता है, कुटुंब के हित का भी काम होता है, लोक-परलोक सब ठीक हो जाते हैं। सभी तरह से लाभ ही लाभ है। हानि नहीं है किंचित मात्र भी, केवल लाभ ही लाभ है। फिर भी ऐसे काम मे नहीं लगते तो फिर क्या करेंगे ? क्या कर सकेंगे ? समय चला गया बहुत सा। मौत का कुछ पता तो है नहीं अतः आज दिन से ही इसमे लग जाओ। इतने दिन क्या काम किया ? कितना काम कर लिया ? पारमार्थिक काम कितना हो गया ? साधन करने वाले भी विशेष उन्नति कर रहे हैं, ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता है।

आप सन्तों से सुनते हैं, ग्रन्थों में पढते है, सन्त-वाणी मे पढ़ते हैं कि बहुत जल्दी काम हो सकता है। एक फूल मलने में भी जितना समय लगता है उतना भी समय नहींलगता, तत्त्व की प्राप्ति मे। क्योंकि जो अपने हित में लगना चाहता है, उसे केवल लगने की जरूरत है। केवल लगने की। उसकी प्राप्ति मे उसकी प्राप्ति की इच्छा ही काफी है। संसार की कोई वस्तु इच्छा करने से नहीं मिलती। इच्छा अनन्य हो। ईश्वर केवल अभिलाषा से मिलते हैं, पर यह बहुत बड़ी भारी कृपा होगी, आप सबको। यदि आप सब इसमें लग जाँय। सारे विरोधी भी प्रशंसा करेंगे। मीराबाई के कुटुंबी आज अपने को धन्य और गौरवान्वित मानते हैं। सच्चे हृदय से लगने वाले से लाभ ही लाभ है। इसमें सब स्वतन्त्र हैं। इसमें कोई पराधीन नहीं है। इसमें सबके सब योग्य हैं। इसमे कोई अयोग्य नहीं है। इसमे अयोग्यता-योग्यता की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है केवल अनन्य अभिलाषा की जैसे हो वैसे ही लग जाओ।

(१०) स्वयं की अनुभूति

एक तरह से देखा जाय तो विशेष बात है और दूसरी तरह से देखें तो सामान्य बात है क्योंकि यह बात बहुत बार कही है। आप लोग कृपा करके ध्यान दें। शास्त्रों के सुनने से हमें ज्ञान होता है, बहुत अच्छा ज्ञान होता है, परन्तु इसमे शास्त्र अलग-अलग हैं। हिन्दू दूसरे शास्त्रों को मानेंगे। मुसलमान दूसरे शास्त्रों को मानेंगे। ईसाई दूसरे शास्त्रों को मानेंगे। बौद्ध अपने शास्त्रों को मानेगें। यहूदी और शास्त्र मानेंगे। पारसी अलग शास्त्र मानेंगे। सबके अपने-अपने शास्त्र अलग-अलग होंगे। परन्तु मनुष्य को जो अपना अनुभव है उसे वह माने तो निहाल हो जाय। और अपना जो अनुभव है वह सब शास्त्रों मे मिलेगा। इसमें मतभेद नहीं होगा। तो कम से कम, कम से कम, कम से कम इस अपने अनुभव को तो मानें। अपने अनुभव को माने तो आदमी निहाल हो जाय।

वह अनुभव क्या है? हम जो देखते हैं सृष्टि को, इसमें हमे ऐसा मालूम होता है कि जो उत्पन्न होता है वह नष्ट होता है। हर एक पदार्थ उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। शरीर उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते है। वृक्ष उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते है। इसी प्रकार कई तरह के आविष्कार होते हैं, उत्पन्न होते है, पहिले बढिया दीखते हैं, फिर घटिया दीखते हैं, फिर मिट जाते है। ऐसे ही कई मत-मतान्तर उत्पन्न होते हैं और लय हो जाते हैं। ऐसे देखने से मालूम होता है कि सृष्टि उत्पन्न होती है और लीन होती है। नमूना देखने से पूरी सृष्टि का पता लग जाता है। तो ये उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं; उनके साथ हम कितना दिन रहेगे भाई? अपने "खुद का" अनुभव किया जाय, स्वयं का ही, तो, मैं तो वही हूं और ये सब बदल गये'। शरीर बदल गया। मन बदल गया। वृत्तियां बदल गयीं। परिस्थिति बदल गयी। मान्यता बदल गयी। ये सब बदलने-बदलने वाले ही हैं। इन बदलने वालों को जो जानने वाला है, वह नहीं बदला। वह यदि बदल जाय तो पहले भाव ये थे और अब भाव यह हुए; इस परिवर्तन को कौन जाने?

शास्त्रों मे यदि विचार कर देखा जाय 'आत्मा की नित्यता के विषय में, तो इसको 'प्रत्यभिज्ञा-ज्ञान' कहते हैं। वह ज्ञान सबसे प्रबल माना गया है। 'प्रत्यभिज्ञा' उसे कहते हैं जो पहले

था, अब भी है, इन दोनों को मिलाकर जो ज्ञान किया जाय। प्रत्यभिज्ञा का लक्षण किया गया है 'प्रत्यभिज्ञा' अर्थात् सत्ता और असत्ता का ज्ञान। उदाहरण के लिए इस प्रकार सरल रीति से आप समझो कि एक आदमी मिलता है बहुत वृद्ध सज्जन से। वह कहता है कि आपने मेरे को जाना कि नहीं। वह वृद्ध कहते हैं, मुझे भैया याद नहीं है। तो वह आदमी कहता है कि उस समय मैं मिला था आपसे। मैं आज से तीस वर्ष पहले मिला था और वहां ऐसी बातें हुई थीं। अच्छा! हां? तुम वही हो। हां! मैं वही हूँ। तो भैया मैंने पहचाना नहीं, अच्छा अब। अब तो महाराज, मैं काम कर रहा हूँ। वह वृद्ध कहते हैं क्या करें, पहले अवस्था अच्छी थी, अब तो बिगड़ गयी, बड़ी तंगी से काम चलता है। तो कहा कि मैं तो महाराज उच्च पद पर नियुक्त हूँ, अच्छी तरह से काम चलता है। ये बात है। तो, अब इसमें यह देखा जाय कि जो वह छोटा था न बालक और तीस वर्ष के बाद अवस्था काफी बदल गयी, तो, वृद्ध ने उसे नहीं पहिचाना। और उसने वृद्ध को पहिचान लिया क्योंकि वह बड़ा था, अवस्था बड़ी थी, उसमे परिवर्तन तो हुआ है, परन्तु कुछ आकृति पहले वाली थी इससे पहिचान,लिया पहिले वह बहुत छोटा था, इस वास्ते अब वह बहुत ज्यादा बदल गया। तो पहिचान मे नहीं आया तो बदलना, न बदलना यह तो बात अलग है; पर पहिचानने मे क्या सिद्ध हुआ? शरीरादि के परिवर्तन होने पर भी सब यह अनुभव करते हैं कि मैं वही हूं। दोनों ही 'मैं वही हूँ' अनुभव करते हैं। यद्यपि अवस्थाओं मे बड़ा अंतर है, देश मे अंतर है, काल मे अन्तर है और परीस्थितियों मे बड़ा अतर है। एक तो कहता है कि उच्च पद पर नियुक्त हो गया हूँ। यानी बड़े ऊँचे पद पर चला गया हूं। और दूजा कहता है कि भैया! बड़ी मुश्किल हो रही है, बड़ी तंगी है। देशकाल, अवस्था, परिस्थिति आदि इन सब बातों मे तो परिवर्तन हो गया, किन्तु मैं वही हूँ। इसमे परिवर्तन नहीं हुआ। 'तो, मैं वही हूँ' इस ज्ञान को प्रत्याभिज्ञा कहते हैं। मैं वही हूँ, इस ज्ञान मे कभी परिवर्तन नहीं होता। नींद आ जाती है, तो भूल जाते हैं सबकुछ पर जगते हैं तो कहते हैं मैं वही हूँ, जो सोया था। नींद मे सपना आया था उसमें भी वही मैं था। तो अपना निरन्तर होनापन और शरीर का और संसार

साथ चलनेवाला जो आपका अन्तःकरण है उसे आपने बिगाड़ लिया। अतः चेत करो। झूठ का दण्ड भोगना पड़ेगा। पाप करोगे तो नरकों में जाना पडेगा। नरकों में महान त्रास होगा। सब नष्ट हो जाय और महान् आफत हो जाय वह तो हम करलेंगे परन्तु जिससे महान शान्ति हो जाय, परमानन्द की प्राप्ति हो जाय उस-अपने तत्व को, अपने स्वरूप को नहीं समझेंगे। आप नित्य निरन्तर रहने वाले इन तुच्छ, आने-जाने वाली वस्तुओं से सुखी-दुखी हो जाते हो बड़े आश्चर्य की बात है। यह अपने आप, आप ही समझो। यह तो आपका खुद का ज्ञान है। इसमे किसी का क्या है ? यह ता सबका है। हम सबमें यह ज्ञान है। संत-महात्मा भी इसी बात को कहते हैं।

दर्शनों मे दूसरी बातें भी मिलेगी। पर यह कितनी सरल बात है ? ये प्रकृति के विषय मे कितनी सरल बात है। प्रकृति के विषय मे अनेक मतभेद है-शास्त्रों में प्रकृति के वर्णन मे दार्शनिक भेद अनेक तरह के आते हैं, किन्तु एक बात सबमे है कि इनके (नाशवान के) साथ संबंध रखने से दुःख होता है और संबंध न रखने से शान्ति और आनन्द होता है, इसमे सब एक मत हैं। सीधी सादी बात नाशवान् के साथ संबंध मानकर मैं और मेरा कर लिया तो दुःख पाना पड़ेगा और इससे संबंध छोड़ दोगे तो महान आनन्द हो जायगा। यह जो संसार के साथ संबंध माना, इनका जो सद्भाव ले लिया, इनको जो सच्चा मान लिया, ये गलती हुई है। सच्चा मानने से क्या हुआ कि जो सुनते-समझते नहीं उनकी तो बात ही क्या ? पर जो सुनते, समझते, पढ़ते हैं वे भी यही मानते हैं कि यह मर जायेगा, यह सब नष्ट हो जायेगा। यह समझ मे नहीं आता कि मैं तो नित्य रहने वाला हूँ, इससे मुझमे क्या फरक पड़ेगा ? क्यों नही आता ? क्योंकि आप जब मिलते हो तो वह सच्चा दीखने लगता है। जैसे आपने शरीर के साथ अपने को घुला-मिला लिया तो यह शरीर भी नित्य दीखने लगा। शरीर के साथ अपने को मिला लिया तो शरीर नित्य दीखने लगा। महान् गन्दा शरीर, जिसमे एक तोले भर भी चीज बढ़िया नहीं है, जो महान् अपवित्रता का थेला है, जो (शरीर) मेला ही मेला पेदा करने वाला

है (बढ़िया से बढिया अन्न दे दो और मैला बना लो। गंगाजल के समान पवित्र जल दे दो और पेशाब बनालो। यह है महान् अपवित्रता की मशीन) किन्तु जब इस शरीर को आप रहने वाला और शुद्ध मानते हैं और अच्छा मानते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि यदि आप आज मर जाते हो तो कोई इसे छूता तक नहीं, ऐसा मलीन है यह। इस शरीर के साथ एक होकर के इसे नित्य मानते हो तो नित्य होकर फैल (अनित्य) हो गये। अतः विचार करो। तुम क्या करोगे इसका ? तुम नित्य हो। यह अनित्य है, एक क्षण भी ठहरता नहीं। आपमें युग-युगान्तर होने पर भी परिवर्तन होता नहीं, उसको कीमत न देकर के, अपने सामने उत्पन्न और नष्ट होने वाले को कीमत दे-देकर के अपना नाश कर लिया, अपना पतन कर लिया तो यह नित्य रहने वाला शुद्ध और अच्छा दिखलाई देने लगता है। यह जरा सोचो तो सही ? कभी इससे तृप्ति मिलेगी क्या ? सोचोगे तो होश आ जायगा, होश। नहीं तो बेहोशी-बेहाशो मे यह शरीर चला जायगा। तो कम से कम अपनी जो विचारधारा है, अपना जो ज्ञान है, अपनी जो वास्तविक समझ है, उस पर ध्यान दो। अभी मौका है अब भी नहीं समझोगे, तो कब समझोगे ? समझने की बात यह ही है असली। अपने तो पढ़कर भी सीख सकते है और बिना पढे (सुनकर) भी सीख सकते हैं। पर ऐसे-ऐसे महापुरुष हुए हैं—तत्वज्ञ, जीवन-मुक्त, जिन्हे एक अक्षर का ज्ञान नहीं पढ़ाई और सब कुछ जान लिये। ऐसे सन्त एक पंजाब मे फूलासिहजी हुए हैं। गायें चराते थे। बहुत ही जानकार थे, २०-२५ वर्ष की अवस्था से ही। उनके विषय मे एक सज्जन ने लेख लिखा था, कल्याण मे। उन्होंने लिखा कि मैं उनसे मिला, बातें हुई। उन्होंने बताया कि वे कुछ जानते नहीं थे। भजन करना किसको कहते हैं, यह भी जानते नही थे। भजन को लेखा करते थे। लेखा यानी हिसाब ग्रामीण आदमी अंगुलियों पर लेखा किया करते हैं। बचपन में उन्हे एक सन्त मिले उन्होंने लेखा बता दिया। बचपन से ही वे उसमें लग गये। गाय चराने जंगल में जाया करते थे।

का बदलना, इन दोनों का हमे ज्ञान है। क्या यह ज्ञान हिन्दुओं का या मुसलमान का या ईसाई का है ? समुदाय विशेष का है क्या ? नहीं यह ज्ञान तो सबका एक है। यह, जो स्वयं का ज्ञान है, यदि इसका आदर किया जाय, इसका महत्व समझा जाय तो बहुत बड़ी भारी काम हो जाय। प्र० इसका आदर क्या किया जाय और महत्व क्या समझा जाय ? समाधान इसका महत्व यह समझा जाय कि जो मैं वही हूं। बाकी सभी बदलने वाले हैं। यह तो न बदलने वाला है न बदलने वाले का जो महत्व है, वह महत्व बदलने वाली किसी भी वस्तु का नहीं है।

अब इसे पुनः समझें। चाहे लाखों करोड़ों आपके पास आ जाय, आप हिन्दुस्तान के ही नहीं, अनेक देशों के आप मालिक बन जाय; बिलकुल महाराजा बन जायं तो क्या यह रहने वाली चीज है ? और आप क्या नष्ट होने वाले हैं ? कितनी ही परिस्थिति बदल जाय, ऊंची आ जाय या नीची आ जाय; धन आ जाय या निर्धनता आ जाय, सम्मान मिल जाय या अपमान हो जाय; बड़ाई हो जाय या निन्दा हो जाय ये तो बदलते रहते हैं परन्तु क्या आप भी बदलते है ? आप असली (ठीक) रूप मे निरन्तर रहते हैं। अतः आपका जो मूल्य है, आपका जो व्यापक महत्व है, क्या बदलने वाले का वह महत्व है ?

धातुओं मे सोना (स्वर्ण) बढ़िया माना जाता है। क्यों माना जाता है ? क्योंकि सोने को कीट (जंग) नहीं लगता। सोने मे कुछ मिल जाता है तो मैलापन आता है, पर शुद्ध सोना वैसा ही चमकता है। जो चमकता है, वह सोना बढ़िया माना जाता है। सोना बढ़िया है इस वास्ते वह बहुत बढ़िया माना जाता है। हीरा और भी बढ़िया माना जाता है। क्यों माना जाता है ? एक बात तो यह है कि इसकी कीमत जौहरी जाने।

और दूसरी बात है कि—"चोट सहे सर घन की"

अर्थ क्या हुआ ? हीरे की परीक्षा क्या है ? ऐरन पर रख कर घन मारा जाय जोर से। ऐरन मे भी बैठ जाय और घन मे भी बैठ जाय। पर टूट नहीं ऐरन के ऊपर भी लुहार ने खड़ी लगाई होती है, पक्का लोहा होता है और घन पर भी पक्का लोहा होता है। पक्के लोहे मे भी बैठ जाय यह

हीरे की परीक्षा है। तात्पर्य वह (हीरा) नित्य रहता है। वह टूटता-फूटता नहीं, इस वास्ते वह सबसे बढिया माना जाता है। वह हीरा भी समय पाकर किसी कारण वस टूट जाय—परन्तु आपतो कभी भी टूटते-फूटते ही नहीं। अनन्त युग बीत गये—

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते। (गीता ८/१६)

ऐसे नित्य निरंतर रहने वाले आप, इतने कीमती आप और अपने सामने अपने कमाए हुए धन मे फंस जाय, मान बड़ाई मे फंस जाय, आदर-निरादर में फंस जाए, निरोगता, रोगता के वशीभूत हो जांय, घबरा जायं, कितने महान् पतन की बात है? अरे, रे! यह तो मरने वाला है ही। मरेगा तो भी क्या नया हो गया? यह तो उत्पन्न हुआ है इस वास्ते यह तो मरेगा ही। मरेगा क्या-प्रतिक्षण मर रहा है तो, प्रत्येक क्षण अपने सामने नष्ट होने वाली वस्तुओं को लेकर क्या राजी हो जाय क्या खुशी हो जाय क्या विकल हो जायं क्या रोने लग जाय? रोने लगें या हंसने लगें बहने वाली, नष्ट होने वाली वस्तुओं को लेकर—तो, अपनी कीमत कहाँ समझी हमने ये कोई क्या केवल शास्त्र की बात है? यह तो सबके अनुभव की बात है। यह तो मनुष्य मात्र का अपना खुद का दर्शन है। शास्त्रों मे ये छः दर्शन माने जाते हैं न्याय, वैशषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा, परन्तु यह तो दर्शन खुद का है। यह तो मनुष्य का खुद का ज्ञान है। यह ज्ञान किसी से सीखा हुआ नहीं है। यह किसी एक सम्प्रदाय का नहीं है। किसी एक ग्रन्थ का नहीं है। अतः कम से कम इसको ठीक तरह से समझें और इसको महत्व दें।

आप स्वयं आने वाली चीजों से घबरा जाओ, झूठ-कपट भी करलो, बेईमानी भी करलो, दुराचार भी करलो, पाप भी करलो, जानते हुए अन्याय भी करलो, किस वास्ते? मेरी इज्जत या प्रतिष्ठा रह जाय इसके वास्ते। इज्जत-आदर के वास्ते कर लेते हो पर वह रहेगा नहीं। उसकी तो बात ही क्या—आपका शरीर भी नहीं रहेगा। धन के लिए एक झूठ कह कर अपने को गिरा लिया। उसमे और वह झूठ-कपट आपके साथ रहेगी और धन यहीं रह जायेगा। यहां रहने वाली वस्तुओं के लिए आपके

साथ चलनेवाला जो आपका अन्तःकरण है उसे आपने बिगाड़ लिया। अतः चेत करो। झूठ का दण्ड भोगना पड़ेगा। पाप करोगे तो नरकों में जाना पड़ेगा। नरकों मे महान त्रास होगा। सब नष्ट हो जाय और महान् आफत हो जाय वह तो हम करलेंगे परन्तु जिससे महान शान्ति हो जाय, परमानन्द की प्राप्ति हो जाय उस-अपने तत्व को, अपने स्वरूप को नहीं समझेंगे। आप नित्य निरन्तर रहने वाले इन तुच्छ, आने-जाने वाली वस्तुओं से सुखी-दुखी हो जाते हो बड़े आश्चर्य की बात है। यह अपने आप, आप ही समझो। यह तो आपका खुद का ज्ञान है। इसमे किसी का क्या है? यह ता सबका है। हम सबमें यह ज्ञान है। संत-महात्मा भी इसी बात को कहते हैं।

दर्शनों मे दूसरी बातें भी मिलेगी। पर यह कितनी सरल बात है? ये प्रकृति के विषय मे कितनी सरल बात है। प्रकृति के विषय मे अनेक मतभेद है-शास्त्रों में प्रकृति के वर्णन में दार्शनिक भेद अनेक तरह के आते हैं, किन्तु एक बात सबमे है कि इनके (नाशवान के) साथ संबंध रखने से दुःख होता है और संबध न रखने से शान्ति और आनन्द होता है, इसमें सब एक मत हैं। सीधी सादी बात नाशवान् के साथ सबंध मानकर मैं और मेरा कर लिया तो दुःख पाना पड़ेगा और इससे संबंध छोड़ दोगे तो महान आनन्द हो जायगा। यह जो संसार के साथ संबंध माना, इनका जो सद्भाव ले लिया, इनको जो सच्चा मान लिया, ये गलती हुई है। सच्चा मानने से क्या हुआ कि जो सुनते-समझते नहीं उनकी तो बात ही क्या? पर जो सुनते, समझते, पढ़ते हैं वे भी यही मानते हैं कि यह मर जायेगा, यह सब नष्ट हो जायेगा। यह समझ मे नहीं आता कि मैं तो नित्य रहने वाला हूँ, इससे मुझमे क्या फरक पड़ेगा? क्यों नहीं आता? क्योंकि आप जब मिलते हो तो वह सच्चा दीखने लगता है। जैसे आपने शरीर के साथ अपने को घुला-मिला लिया तो यह शरीर भी नित्य दीखने लगा। शरीर के साथ अपने को मिला लिया तो शरीर नित्य दीखने लगा। महान् गन्दा शरीर, जिसमे एक तोले भर भी चीज बढ़िया नहीं है, जो महान् अपवित्रता का थैला है, जो (शरीर) मैला ही मैला पैदा करने वाला

है (बढ़िया से बढ़िया अन्न दे दो और मैला बना लो। गंगाजल के समान पवित्र जल दे दो और पेशाब बनालो। यह है महान् अपवित्रता की मशीन) किन्तु जब इस शरीर को आप रहने वाला और शुद्ध मानते हैं और अच्छा मानते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि यदि आप आज मर जाते हो तो कोई इसे छूता तक नहीं, ऐसा मलीन है यह। इस शरीर के साथ एक होकर के इसे नित्य मानते हो तो नित्य होकर फैल (अनित्य) हो गये। अतः विचार करो। तुम क्या करोगे इसका ? तुम नित्य हो। यह अनित्य है, एक क्षण भी ठहरता नहीं। आपमें युग-युगान्तर होने पर भी परिवर्तन होता नहीं, उसको कीमत न देकर के, अपने सामने उत्पन्न और नष्ट होने वाले को कीमत दे-देकर के अपना नाश कर लिया, अपना पतन कर लिया तो यह नित्य रहने वाला शुद्ध और अच्छा दिखलाई देने लगता है। यह जरा सोचो तो सही ? कभी इससे तृप्ति मिलेगी क्या ? सोचोगे तो होश आ जायगा, होश। नहीं तो बेहोशी-बेहाशो मे यह शरोर चला जायगा। तो कम से कम अपनी जो विचारधारा है, अपना जो ज्ञान है, अपनी जो वास्तविक समझ है, उस पर ध्यान दो। अभी मौका है अब भी नहीं समझोगे, तो कब समझोगे ? समझने की बात यह ही है असली। अपने तो पढ़कर भी सीख सकते है और बिना पढे (सुनकर) भी सीख सकते हैं। पर ऐसे-ऐसे महापुरुष हुए हैं—तत्वज्ञ, जीवन-मुक्त, जिन्हे एक अक्षर का ज्ञान नहीं पढ़ाई और सब कुछ जान लिये। ऐसे सन्त एक पंजाब मे फूलासिहजी हुए हैं। गायें चराते थे। बहुत ही जानकार थे, २०-२५ वर्ष की अवस्था से ही। उनके विषय में एक सज्जन ने लेख लिखा था, कल्याण में। उन्होंने लिखा कि मैं उनसे मिला, बातें हुईं। उन्होंने बताया कि वे कुछ जानते नहीं थे। भजन करना किसको कहते हैं, यह भी जानते नहीं थे। भजन को लेखा करते थे। लेखा यानी हिसाब ग्रामीण आदमी अंगुलियों पर लेखा किया करते हैं। बचपन मे उन्हे एक सन्त मिले उन्होंने लेखा बता दिया। बचपन से ही वे उसमें लग गये। गाय चराने जंगल मे जाया करते थे।

गायें चरावें और लेखा करें। किन्तु लेखा में अड़चन आने लगी। गायो को देखें तो लेखा (भजन) कैसे करें ? लेखा करें तो गायों को देखने में बाधा पड़ जाय। उन्होंने एक उपाय निकाला। इस वास्ते गायों से कह देते ये गौ खेत है, इनमें हमारा तुम्हारा दोनों का भाग है; ऊपर का भाग हम ले लेंगे तो नीचे का भाग तुम्हारा को ही मिलेगा, इस वास्ते मिला हुआ भाग जिन खेतो मे है उन खेतो की तरफ मत जाना। यह कह कर अपने लेखा मे लग जाते थे। उनकी गायें फिर खेत में नहीं जाती थीं। इस बात को अन्य छोकरों को पता लगा। वे भी अपनी गायें उनकी गायों के साथ छोड़ देते और खेलते रहते। गायों को यह सुना दिया—(कह दिया) कि खेतों से तुम्हारा-हमारा मिला हुआ भाग है। हम हमारा ले लगे बाकी तेरे को ही मिलेगा, तो नासमझ गायें भी समझवान हो जाती और खेतों मे नहीं जाती, केवल बाहर-वाहर ही घास चरतीं। पण्डित जी ने उनसे पूछा कि महाराज !

"सत्यं प्रतिष्ठायां क्रिया फल त्रियत्वम्"

पातजलि योग दर्शन मे ऐसा आया है कि जो सच बोलता है, वह जो बात कहता है वह बात सच्ची हो जाती है, यह कैसे हो जाती है ? यह सुनकर वे आश्चर्य चकित हो, बोले अच्छा, यह बात पोथी मे लिखी है। हां, महाराज पोथी में लिखी है। हम तो यों समझते हैं कि पोथी में जो लिखी बात होती है वह ठीक होती है और वे यह कहते हैं कि यह बात क्यम पोथी मे लिखी है यानी इनको पोथी मे लिखने की क्या आवश्यकता है। जो बात जीवन मे होने वाली है। उसे पोथी मे लिखने की क्या जरूरत है। पण्डित जी ने पूछा—महाराज ! वह कैसे सच्ची हो जाती है ? उन्होंने उत्तर दिया जो सच बोलता है उसका अन्तःकरण सच्चा हो जाता है। अतः जो बात होने वाली है, जो सच्ची बात होती है, वही सच्ची बात उसके पैदा होती है। यह अर्थ-व्यास-भाष्य मे कहीं भी नहीं लिखा है। व्यासजी के भाष्य मे अथवा योगदर्शन पर लिखने वाली टीका मे भी यह अर्थ नहीं लिखा है। वे बिलकुल अपढ़ आदमी थे, उन्होंने यह अर्थ सुनाया। ऐसा क्यों हो जाता है ? हृदय सच्चा है।

हृदय सच्चा होता है तो सच्ची-स्फुरणा होती है। वे वही सच्ची बात कहते हैं और वही बात वैसे ही हो जाती है। टीका देखी नहीं, दर्शन जानते नहीं; पढ़े-लिखे थे नहीं। पर बात बता दी। क्या वह पढ़ायी के अधीन है ? ना, इसपर सबका अधिकार है चाहे जो लेलो।

राम दड़ी चौड़े पड़ी सब कोई खेलो आय।
दावा नहीं संतदास जीते सो ले जाय॥

कम से कम अपने दर्शन का अपने को लाभ उठाना चाहिये। ये नाशवान् हैं, मरने वाले हैं। अरे भाई! मरने वालों के मरने पर रोना धोना क्या ? जो जन्मता है, वह मरता ही है। नई बात क्या हो गयी

ऊगे सो आथवे, फूल्या सो कुम्हलाय।
चिण्या देहपड़े-जाया सो मर जाय॥

जो जन्मता है सो मरता है। मर गया तो क्या हो गया ? मरने का ही तो रोना है। अतः क्या रोवे और क्या हँसे ?यदि हम भी रोते और हँसते रहे तो मनुष्यों मे और पशुओं मेक्या अन्तर है ? पशु को अनुकूलता दो तो राजी हो जायगा और प्रतिकूलता मे नाराज हो जायगा। कुत्ते को अनुकूल करो तो दुम हिलाने लगेगा और प्रतिकूल होगे तो काटने को दौडेगा। यह बात मनुष्य मे रही तो क्या यह इज्जत है मनुष्य शरीर की ?



(११) सुहृदं सर्वं भूतानाम्

गीता मे भगवान् ने कहा—

सुहृदं सर्वं भूतानां ज्ञात्वा मां शान्ति मृच्छति। (गीता पर ५/२९)

गीता में भगवान् ने बताया है कि मैं संपूर्ण प्राणी मात्र का सुहृद हूँ। 'प्राणी मात्र का मैं सुहृद हूँ' इस बात को यदि प्राणी जानले तो शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

संसार मे जिनको अपना मानते हैं कि ये धन, सम्पत्ति, वैभव अपना है, कुटुम्ब अपना है, यह अपना है, ये अपनी हैं, ये अपने लिए हैं, विचार कर देखा जाय तो ये अपनी है ही नहीं क्योंकि पहले अपनी थी नहीं, और फिर ये अपनी रहेगी नहीं। यह सबका अनुभव है। आज जिस सम्पत्ति को अपना मानते हैं, आज से सौ वर्ष पहले यह अपनी नहीं थी और आज के सौ वर्ष आगे यह अपनी नहीं रहेगी। पहले अपने नहीं थे और पीछे अपने नहीं रहेगे। तो फिर बीच मे अपने कैसे हुए वास्तव मे हैं नहीं अपने, भूल से मान लिये हैं अपने तो दीखते हैं अपने। ऐसे जो-जो अपने दीखते हैं उनसे अपने दीखने वाले व्यक्तियों की सेवा कर देना है। बस इतना ही काम है। इनको सदा के लिए अपनी मान लेना, इन पर अधिकार मान लेना, यह गलती है। ये उपयोग में लाने के लिये अपनी अपनी बनाई गयी है, बताई गयी है। इस वास्ते इन पर कब्जा नहीं मानना क्यों कि ये जाने वाली है। इन पर अधिकार रहेगा नहीं अपनी न होते हुए भी इन पर कब्जा कर लेते हैं तो दुखी होते हैं और जब चली जाती है तब रोते हैं जब ये हमारा नहीं है तो हमारा कौन है ? समाधान हमारे भगवान् हैं। भगवान् कहते हैं 'मैं तुम्हारा हूँ'।

"सुहृदं सर्वभूतानाम्"—

भगवान् कहते हैं कि प्राणी मात्र का मैं परम सुहृदं हूं।

क्योंकि 'ममैवांशो' है यहाँ यह है ही भगवान् का अंश। गीता भगवान कहते हैं कि प्राणीमात्र को मैं परम सुहृद हूँ। सुहृद वह होता है जिसमे कृपा भी होती है और प्रेम भी होता है। अपनापन होकर के दया भी होती है उस पर। ऐसा भाव होता है सुहृद का। मित्र, मित्रता के बदले मित्रता रखता है। स्वार्थ के बदले स्वार्थ रखता है, वह मित्र होता है किन्तु जो उपकार की कोई अपेक्षा नहीं रखता। और अपनी तरफ से उपकार करता ही रहता है उसका नाम होता है सुहृद। भगवान कहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों का मैं सुहृद हूं। इस वास्ते अपने तो प्रभु ही हैं।

सज्जनों अपना नहीं है यह शरीर जो अपना कहलाता है। किन्तु इसे मेरा मान लेते है। एवं मेरे से अगाड़ी चलकर में भी अपना मान लेता हूँ। अर्थात यह (शरीर) में ही मैं हूँ-ऐसा मान लेते हैं मेरे से ज्यादा हिल-मिल कर मैं ही मान लेता हूँ कि मैं ही शरीर हूँ। परन्तु मैं शरीर नही हूँ। और शरीर मेरा भी नहीं है। मैं शरीर हूँ ही तो या तो मृत्यु के समय शरीर साथ चला जाता या फिर शीरर रहता तब तक वह स्वयं भी रहता यदि दोनों एक होते तो साथ जाता या साथ रहता पर ऐसा होता नहीं है शरीर यहाँ हो पड़ा रहता है और स्वयं चला जाता है। मैं शरीर होता है। तो इस वास्ते शरीर मैं नहीं हूँ।

'मेरा' जो होता है उस पर अपना आधिपत्य होता है। यदि शरीर मेरा होता तो उसे बीमार न होने देते। बूढ़ा नहीं होने देते। कमजोर नहीं होने देते। यानी शरीर जब हमारा है तो इस पर हमारा वश चलता नहीं वश इस पर चलता नहीं है तो हमारा कैसे हुआ यह शरीर? ऐसे ही मन का परिवर्तन यह हाथ को बात नहीं है, मन का परिवर्तन नहीं कर सकते। तो मन हमारा नहीं है।

ये हमारा नहीं है, केवल इतनी ही बात नहीं है, ये हमारे लिये भी नहीं है। **हमारे लिये होता तो हमारे साथ रहता।** किन्तु सदा हमारे साथ मे रहता नहीं। इसके लिए जो पाप कर लेते हैं उसका फल भोगना पड़ता है हमे, और शरीर यही रह जाता है। पाप करके खाने, पीने, सोने में शरीर को आराम देता हैं, पर पाप शरीर को थोड़े ही भुगतना पड़ता है पाप तो खुद को ही भुगतना पड्ता है। जैसे—मोटर चलाने वाला है। मोटर से कोई मर जाय तो मोटर चलाने वाले ने उसे छुआ भी नहीं, परन्तु मोटर को फांसी या दण्ड नहीं होता, अपितु चालक को ही दण्ड—भोगना पड़ता है, इसी प्रकार शरीर हमारा है ऐसा मानने से दण्ड हमे भुगतना पड़ता है। तो सार आया कि यह दुख देने के लिए हमारा माना हुआ है। वास्तव मे यह हमारा नहीं है और हमारे लिए भी नहीं है।

हाँ, इससे सेवा की जाय तो लाभ हो सकता है। यह हमारा नहीं है और हमारे लिए नहीं है। यह संसार का है और संसार के लिए है। इस संसार की सेवा मे लगा दिया जाय तो अपने को लाभ हो जाता है। क्या लाभ होता है? (१) अपने बंधन नहीं होता, और (२) ये हमारा नहीं है, यह अनुभव हो जाता है।

पहली बात तो यह है कि यह शरीर हमारा नहीं है और हमारे लिए नहीं है तथा दूसरी यह है कि इससे हमारे को कुछ मिलने वाला है भी नहीं।

नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः

गोता मे भगवान नेऽस देह को असत् अन्त वाला बताया और देही को सत् बतलाया है। अन्त वाली चीजों का अन्त हो जायेगा तो फिर हमारे क्या काम आवेंगी ? सज्जनों ! ये हमारी नही है ये ससार को है। अतः संसार की चीज ससार के काम आ जायँ। इस वास्ते न संसार की सेवा कर देना चाहिए। इनको अपना मान लेना गलती है। वे अपनो नहीं है

अपना कौन है ? मुश्किल यह है कि जो अपना है वह दीखता है नहीं। और जो दीखता है वह अपना है नहीं। जिसे अपना देखते हैं वह अपना है नहीं। जो अपना है वह दीखता नहीं। भगवान् कहते हैं 'मैं तुम्हारा हूँ' पर वे दीखते नहीं। प्र०—जो अपना है वह क्यों नहीं दीखता है ? समाधान अभी कहा न कि अपना है वह दीखता नही है। अपने मां-बाप को हमने (किसी) ने नहीं देखा। किन्तु मां-बाप को हम मानते हैं। उनके शरीरों को हम देखते हैं। पर वास्तव मे ये पिताजी है, ये माताजी हैं, ऐसा ठीक हम नहीं जानते। क्यों नहीं जानते ? अतः उन्हे देख सकता ही नहीं क्योंकि पैदा ही नहीं हुआ था। जिसे देख नहीं सकते, उसको हम मान लेते हैं। जैसे हमारे माता-पिता को हम देख नहीं सकते, तो मान लेते है, ऐसे ही परमात्मा को हम मान लें। प्र०—पिताजी तो हमारे दीखते हैं पर भगवान् तो दीखते नहीं। समाधानः परमात्मा सबसे पहले थे। परमात्मा से ही सृष्टि हुई है। परमात्मा को देखा नहीं किसी ने क्योंकि भगवान् सबके आदि हैं। भगवान् कहते हैं मेरे से ही सब उत्पन्न हुए हैं। मेरे से हो सब क्रिया होती है। सबका मैं आदि हूँ। इस लिए वे मेरे को क्यों जानें ?

नमे विदुः सुरगणा प्रभवं न महर्षयः॥
अह आदिर्हि देवानाम् मर्षीणां च सर्वशः॥ गीता १०/२)

घड़ा होता है, वह पृथ्वी को अपने मे भर नहीं सकता परन्तु पृथ्वी के साथ अपनी एकता रखता है। ऐसे ही हमे भगवान् को अपने ज्ञान के अन्दर नहीं देख सकते हैं। अपितु भगवान् के साथ अपनी एकता है कि अनुभव कर सकते है। घड़े मे मिट्टी के सिवाय कुछ है ही नहीं। मिट्टी की ही सबसे बड़ी सत्ता है। उसमे ऐसे हो परमात्मा को सत्ता हमारे मे हैं। घड़ा मिट्टी

अपना स्वरूप देखता है। वह जानता है कि अन्त मे वह मिट्टी होगा। वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता नही मानता। यह सब विराट देह है परमात्मा की। इसमे उत्पन्न होने वाले की सत्ता स्वतन्त्र सत्ता नही है। संसार बनता—बिगड़ता, बनता बिगड़ता रहता हैं इस वास्ते इसकी स्वतत्र सत्ता नहीं है। परमात्मा सदा रहते है। वह परमात्मा कहता है कि तुम्हारे समझ मे यदि नहीं भी आवे तो भी कम से कम तुम मेरे को सुहृद मान लो। यदि हम कोई एक समर्थ आदमी को भी अपना सुहृद मान लेते हैं तो अपने मे काफी गरमी का अनुभव करते हैं। वे हमारे हैं, हमारे साथ रहते हैं। ऐसी गरमो आती है। फिर अनन्त ब्रह्माण्ड नायक भगवान् हमारे सुहृद हैं, जब ऐसा मान लें। तो कितनी मस्ती आजावेगी। फिर अशान्ति हैं ही नहीं, वहाँ। जहाँ जाँय, वहाँ हमारे सुहृद भी है। सम्पूर्ण लोकों का जो है मालिक वह मेरा सुहृद है, इस प्रकार मानने से शान्ति मिलती है। शांति तो चाहते हैं, पर जो अपना नहीं है उसे अपना मानते हैं। यह बड़ी गलती है। 'जो अपना नहीं है' उसे अपना न मानें और 'जो अपना है' उसे अपना मानें। 'अपना नहीं है' उसका पता है, इस वास्ते उसे अपना न माने। 'अपना है' उसका कुछ पता है, इस वास्ते उसे अपना मान लें। संतों से, महात्माओं से, उनके अनुभव की बात सुनी है—उन्होंने परमात्मा को अपना माना है और वे शान्ति को प्राप्त हो गये हैं। उनकी वाणी से, इस उदाहरण से हमारा काम आसान हो गया। मिट्टी से बने घड़े की तरह ही उनके सिद्धान्तों को मनन करने से शान्ति मिलती है। मीरा बाई के पद बडे अच्छे लगते हैं।

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो ना कोई"

जिन्होंने भगवान को अपना माना, उनके पद भी अच्छे लगते हैं। वाणी भी अच्छी लगती है। इस वास्ते हमलोग भी 'वे ही अपने हैं' यह मानें। संसार को अपना मानेगें तो उससे अशान्ति मिलेगी।

ससार का कायदा है कि जिसके हाथ मे कोई व्यापार लग गया है वह दूसरा चाहेगा तो उसे जनायेंगे नहीं, बतायेंगे नहीं। पीछे पड़ जाओगे तो भी बतायेंगे नहीं। पता चल जाय कि ये हमारे साथ हैं, तो जाना

लिखे हों, तो भी इस उपदेश को जानने मे कोई बाधा नहीं। साधारण से सावारण, बगैर पढे लिखे से लेकर बडे भारी दिग्विजयी पण्डित तक सबके काम का उपदेश भगवान् ने गीता मे दिया है। वह क्या है ? अपना अनुभव। आप जो जानते है उसी अनुभव को भगवान् ने गीता मे कहा है। सब लोग क्या जानते हैं कि भाई शरीर आर हम (मैं)-ये दो हैं। ये बात सभी जानते है। इसका ज्ञान है, सबको। इस बात पर विशेष ध्यान न देकर इसे महत्व नहीं देते, इसका आदर नहीं करते, इस बात पर डट-कर के पक्के स्थिर नहीं रहते है, यह एक बात अलग है किन्तु आपको पता नहीं हो, यह बात नहीं है। कैसे ? हमारे सामने चाहे मनुष्य मरे, चाहे पशु-पक्षी मरे। शरीर यहां रहता है और शरीर मे रहने वाला चला जाता है। यदि शरीर और वह एक होता तो शरीर के रहने पर वह रहता और उसके न रहने पर शरीर भी न रहता। चाहे तो शरीर के साथ वह रहता, चाहे उसके साथ शरीर चला जाता। दोनों बातें नहीं होती हैं। इससे सिद्ध होता है कि शरीर दूसरा है और वह दूसरा है। जैसे मकान को छोड़ कर हम बाहर चले जाय और मकान पीछे रह जाय, इससे यह सिद्ध हुआ कि मकान और हम दो हैं। यदि दो न होते तो हम चले जाते तो हमारे साथ मकान भी चला जाता। अथवा वह न चला जाता है तो मकान के साथ हमे रहना ही पड़ता। जैसे मकान और हम एक हैं ऐसा होता नहीं, इसी तरह से यह शरीर और "मैं" (हम) अलग हैं। ये दो हैं, अलग-अलग हैं। अब इन दोनों में शरीर को अपने से अलग समझ कर अपने को नित्य समझना है और शरीर को अनित्य, नाशवान और क्षणभंगुर समझना है, जो कि वास्तव में है। इस समझ का नाम है सांख्य। अशोधान्वशो चस्त्व" (गीता २/११) 'नत्वं शोचितुमर्हसि' दूसरे अध्याय के तीसवें श्लोक तक को सांख्य योग, सांख्यनिष्ठा, ज्ञानयोग, ज्ञानमार्ग, सन्यास, सन्यास-मार्ग कहते हैं।

योगमार्ग किसको कहा ?

"एषातेऽभिहिता सांख्ये" सांख्य मे जो बात कही गई भगवान् उसी बात को अब बुद्धियोगे त्विमां श्रृणु'—कहकर योग के विषय मे सुनो। ऐसी आज्ञा देते हैं। सांख्य के विषय मे कहा कि तुम शरीर से अलग हो, ससार मात्र से अलग हो। उनके (शरीर और संसार के) साथ तुम एक नहीं हो-यह सांख्य शास्त्र है। योगमार्ग क्या है ? अब उसके विषय मे कहते हैं कि शरीर और ससार एक है यह मान करके चलना योग दृष्टि है। अब ध्यान दें। यह प्रक्रिया सांख्य से अलग है। शरीर और ससार, इनका अलगाव हो नहीं सकता क्योंकि जिस धातुका बना हुआ सब ससार है, उसी धातु का बना हुआ यह शरीर है।

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पच रचित यह अधम शरीरा॥

शरीर और संसार की एकता है। सांख्य से तो बताया कि संसार से अलग होकर परमात्मा के साथ एक हो जाओ। और योग से बताया कि अपने अनुभव के आधार पर शरीर और संसार की एकता कर दो, शरीर को साथ लेकर ससार के साथ एक हो जाओ। अर्थात् शरीर संसार का हैं, संसार शरीर का है। इन दोनों मे भी शरीर है यह ससार का है। अब शरीर से जितना कार्य हो केवल ससार के लिए हो, अपने लिए नहीं। बस, यह योगनिष्ठा है। यह कर्मयोग को सार बात है।

शरीर से काम किया जाय, वह सब ससार के लिये किया जाय। अपने जल पीते हैं, भोजन करते हैं, वह पूरे शरीर के लिये होता है। उसमे ऐसा नहीं होता कि मैं केवल अपने पेट के लिये खाता पीता हूँ, अथवा नाक के लिये, कान के लिये, किसी एक अगुली के लिये भोजन करता हूँ, जैसे भोजन करना सब शरीर के लिये होता है, ऐसे हो सम्पूर्ण काम दुनिया मात्र के हित के लिये किये जाँय, अपने सुख, अपने हित के लिये नहीं। तब यह कर्मयोग हो जायगा। "सबका हित कैसे हो" यह कर्मयोग है। अपना सुख अलग मानता है, वह योगी नहीं होता है, भोगी होता है। अपना सुख भोगे तो भोगी हुआ योगी कैसे हुआ अपना सुख अलग नहीं है,

इधर है तो उधर जायेंगे। पता नहीं लगने देंगे। किन्तु परमात्मा के जानने वाले बहुत खुश होते हैं बताने मे। क्योंकि 'वे' भी तो सुहृद हैं भगवान् और भगवान् के भक्त दोनों ही सुहृद हैं। गोस्वामी जी महाराज कहते हैं।

"हे तु रहित जग जुग उपकारी तुम तुम्हार सेवक असुरारी"

दोनों ही बिना कारण हित करने वाले हैं क्योंकि सुहृद हैं। भागवत मे भक्तों के लिए आया है।

सुहृदः सर्व दहिनाम्। श्रीमद्भ (३/२५/२१)

जितने देहधारी हैं उनका मे सुहृद हूँ गीता मे भगवान ने कहा।

"सुहृदं सर्व भूतानाम् ज्ञात्वा मां शान्ति मृच्छति" (गीता ५/२९) इस वास्ते भगवान् को सुहृद मान लें, अपना मान ले। और भगवान् के सिवाय जो कुछ और है अपना नहीं है यह साथ मे मान लें। संसार अपना किसलिये है, सेवा करने के लिए है। इस वास्ते वस्तुओं के द्वारा संसार सेवा करें और मानलें कि हम भगवान् के हैं।



(१२) सांख्य और कर्मयोग

गीता में भगवान् ने कहा—"लोकेस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। (गीता ३/३)

दूसरे अध्याय ३८ वे श्लोक मे कहा था और चौथे अध्याय के प्रथम श्लोक मे कहा।

"इमं विवस्तते योगं प्रोक्तावान हमव्ययम्"

इक्ष्वाकु वंश में ही भगवान् राम जी अवतार लिया।

"विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वा कवेऽब्रवीत"

अनादि काल से सूर्य है। सूर्य चन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पमात् अर्थ—चन्द्रमा जैसे पहले कल्प मे थे वैसे ही सूर्य चन्द्रमा इस कल्प मे प्रकट हुए। कल्प के आदि मे जब सूर्य-चन्द्र प्रकट हुए, पृथ्वी प्रकट हुई तब मैंने यह (कर्मयोग) उपदेश सूर्य भगवान् को दिया था। तो "पुरा" का अर्थ हुआ उस समय। यानी कल्प के आदि में! "लोकेस्मिन् द्विविधा निष्ठा" से दो तरह को निष्ठा बताई। "इमं विवस्वते योग" यहाँ यह योग कर्मयोग का वाचक है। दूसरे कई ऐसा भी अर्थ लेते हैं कि कर्मयोग साधन है और साख्यसाध्य है। कई ऐसा मानते तो हैं, परन्तु प्रसंग कर्मयोग का है। क्योंकि दूसरे अध्याय मे "एषातेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोगेत्विमां श्रणु मे भगवान् कहते हैं कि सांख्य मे जो बात कही गई है अब उसे योग के विषय मे सुनो। और फिर कर्मयोग का ही विवेचन करते हैं। 'सांख्य' के विषय मे कही वह क्या कही (गीता २/३९) इसमें एक बात ध्यान देने की है आप लोग ख्याल करें। विशेष ध्यान दें। इस बात (द्विविधा निष्ठा) पर अभी जो ये (कर्मयोग, बात कही वह तो गीता को बात कही है। गीताभ्यासियों के लिये तो ठीक हैं परन्तु जो गीता पढ़ते नहीं और जिन्हे गीता याद नहीं, उनको विशेष आनन्द नहीं आवेगा। इस वास्ते अब यही बात सरल शब्दों मे बताता हूं।

भगवद्गीता का उपदेश साधारण से साधारण प्राणियों के लिए, मनुष्यों के लिए भी है। वे पढ़े लिखे हों अथवा योग्यता वाले हों अथवा बिना पढ़े

लिखे हों, तो भी इस उपदेश को जानने मे कोई बाधा नहीं। साधारण से साधारण, बगैर पढे लिखे से लेकर बडे भारी दिग्विजयी पण्डित तक सबके काम का उपदेश भगवान् ने गीता में दिया है। वह क्या है ? अपना अनुभव। आप जो जानते है उसी अनुभव को भगवान् ने गीता मे कहा है। सब लोग क्या जानते हैं कि भाई शरीर आर हम (मैं)-ये दो हैं। ये बात सभी जानते है। इसका ज्ञान है, सबको। इस बात पर विशेष ध्यान न देकर इसे महत्व नहीं देते, इसका आदर नहीं करते, इस बात पर डट-कर के पक्के स्थिर नहीं रहते हैं, यह एक बात अलग है किन्तु आपको पता नहीं हो, यह बात नही है। कैसे ? हमारे सामने चाहे मनुष्य मरे, चाहे पशु-पक्षी मरे। शरोर यहां रहता है और शरीर मे रहने वाला चला जाता है। यदि शरीर और वह एक होता तो शरीर के रहने पर वह रहता और उसके न रहने पर शरीर भी न रहता। चाहे तो शरीर के साथ वह रहता, चाहे उसके साथ शरीर चला जाता। दोनों बातें नहीं होती हैं। इससे सिद्ध होता है कि शरीर दूसरा है और वह दूसरा है। जैसे मकान को छोड़ कर हम बाहर चले जाय और मकान पीछे रह जाय, इससे यह सिद्ध हुआ कि मकान और हम दो हैं। यदि दो न होते तो हम चले जाते तो हमारे साथ मकान भी चला जाता। अथवा वह न चला जाता है तो मकान के साथ हमे रहना ही पड़ता। जैसे मकान और हम एक हैं ऐसा होता नहीं, इसी तरह से यह शरीर और "मैं" (हम) अलग हैं। ये दो हैं, अलग-अलग हैं। अब इन दोनों में शरीर को अपने से अलग समझ कर अपने को नित्य समझना है और शरीर को अनित्य, नाशवान और क्षणभंगुर समझना है, जो कि वास्तव में है। इस समझ का नाम है सांख्य। अशोध्यान्वशो चस्त्व" (गीता २/११) 'नत्व शोचितुमर्हसि' दूसरे अध्याय के तीसवें श्लोक तक को सांख्य योग, सांख्यनिष्ठा, ज्ञानयोग, ज्ञानमार्ग, सन्यास, सन्यास-मार्ग कहते हैं।

योगमार्ग किसको कहा ?

"एषातेऽभिहिता साङ्ख्ये" सांख्य में जो बात कही गई भगवान् उसी बात को अब बुद्धियोंगे त्विमा श्रृणु'—कहकर योग के विषय मे सुनो। ऐसी आज्ञा देते हैं। सांख्य के विषय मे कहाकि तुम शरोर से अलग हो, ससार मात्र से अलग हो। उनके (शरीर और ससार के) साथ तुम एक नहीं हो-यह सांख्य शास्त्र है। योगमार्ग क्या है? अब उसके विषय मे कहते है कि शरोर और ससार एक है यह मान करके चलना योग दृष्टि है। अब ध्यान दें। यह प्रक्रिया सांख्य से अलग है। शरीर और ससार, इनका अलगाव हो नहीं सकता क्योंकि जिस धातुका बना हुआ सब ससार है, उसी धातु का बना हुआ यह शरोर है।

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पच रचित यह अधम शरीरा॥

शरीर और संसार को एकता है। सांख्य से तो बताया कि संसार से अलग होकर परमात्मा के साथ एक हो जाओ। और योग से बताया कि अपने अनुभव के आधार पर शरार और ससार को एकता कर दो, शरीर को साथ लेकर संसार के साथ एक हो जाओ। अर्थात् शरीर संसार का हैं, संसार शरीर का है। इन दोनो मे भी शरीर है यह ससार का है। अब शरार से जितना कार्य हो केवल ससार के लिए हो, अपने लिए नहीं। बस, यह योगनिष्ठा है। यह कर्मयोग को सार बात है।

शरीर से काम किया जाय, वह सब ससार के लिये किया जाय। अपने जल पीते हैं, भोजन करते हैं, वह पूरे शरीर के लिये होता है। उसमे ऐसा नहीं होता कि मैं केवल अपने पेट के लिये खाता पीता हूँ, अथवा नाक के लिये, कान के लिये, किसी एक अगुली के लिये भोजन करता हूं, जैसे भोजन करना सब शरीर के लिये होता है, ऐसे हो सम्पूर्ण काम दुनिया मात्र के हित के लिये किये जाँय, अपने सुख अपने हित के लिये नहीं। तब यह कर्मयोग हो जायगा। "सबका हित कैसे हो" यह कर्मयोग है। अपना सुख अलग मानता है, वह योगी नहीं होता है, भोगी होता है। अपना सुख भोगे तो भोगी हुआ योगी कैसे हुआ अपना सुख अलग नहीं है,

सबको सुख देना है, सब का हित करना है, ऐसा भाव विचार है वह योगी है। सबका ही कल्याण हो जाय, किसके द्वारा ? सबका जो शरीर है, उसके द्वारा। जो ससार का है, वह उसी के हित मे लग जाय, यह कर्मयोग है। स्थूल शरीर को स्थूल, शरीरो के साथ एकता, सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म शरीरों के साथ एकता, कारण शरीर की कारण शरीरों के साथ एकता है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण ये समझ में नहीं आवे तो कोई हर्ज नहीं। ससार के साथ शरीर की एकता है, ऐसा मानकर संसार के लिये काम खूब किया जाय।

शरीर से संसार के हित के लिये काम किये जाय उसके लिये एक बात ध्यान देने की है। जैसे मनुष्य कहीं जाता है तो मन में आती है कि मैं क्यों जाऊँ ? मेरे को क्या मिलेगा ? मेरा क्या मतलब ? कहीं क्यों जाऊँ ? किसका लाभ होगा ? किसका भला होगा ? ये कई तरह के प्रश्न उसके मन मे होते हैं। योग मे उसका उत्तर क्या है ? सबको सुख होगा। सबको लाभ मिलेगा, सबका हित होगा-इसलिए जाना है। संसारी को तो होता है कि मुझे सुख लाभ मिले और योगी को होता है सबका लाभ-हित सुख हो—दोनो मे इतना फर्क है। सबको मिले यह योग है और मेरे को मिले यह भ ग है। इतनी ही बात है, केवल इतनी ही। योग की बात-सबके हित के लिये, सबके लाभ और सुख के लिये है क्योंकि सबकी ही चीज है। इनको सबके हित के लिये लगाना है। सबकी चीज अपने हित मे लगाना ईमानदारी की बात नहीं है। ईमानदारी की बात है, सबकी चीज सबके हित मे लगा देनी। तो आप चाहे काम धन्धा करें, चाहे भोजन करें, चाहे जल पीएं, चाहे बैठें, चाहे चलें, परन्तु सबके हित के लिये करें। सबका हित किस बात मे है ? सबका कल्याण किस बात में है ?। इसका हर समय विचार करें। जिसमे सबका हित नहीं, वह काम नहीं करें। सबको सुख नहीं पहुँचे वह काम नहीं करें। जैसे शरीर के किसी अवयव मे कष्ट पहुँचे तो वह काम नहीं करते है, ऐसे ही यह सारा ससार भी एक शरीर है, इस वास्ते सबके हित के लिये बात करें जप करें तो दुनिया के कल्याण के लिये। तप करें तो दुनिया के कल्याण

के लिये। स्वाध्याय-ध्यान, पठन-पाठन करें तो सबके कल्याण के लिए। बात करें तो कल्याण के लिए। जो कुछ करें, सपूर्ण दुनिया के कल्याण के लिए करें। 'किस प्रकार सबका हित हो' यह विचार करता ही रहे। ते "प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतेहितेरता :"। (गीता १२/४)

योगी की प्राणीमात्र के हित मे रति-होनी चाहिए। जैसे ससारी मनुष्य के भीतर स्वतः रहती है कि मेरे को लाभ मिल जाय, मेरे को धन-सम्पति, मान-बड़ाई मिल जाय अथवा मेरा कल्याण हो जाय, उद्धार हो जाय, मेरे को भगवान् मिल जाय ऐसी ही कर्मयोगी के भीतर "मेरे को धन-सम्पति मिल जाय, या भगवान् मिल जाय" इन दोनों बातों की जगह सबका कल्याण हो जाय, सबका हित हो जाय, सबके लाभ हो जाय, सबको भगवान् की प्राप्ति हो जाय, सबको तत्वज्ञान हो जाय, सभी मुक्त हो जायं, ऐसा भाव होना चाहिए। सबके हित का भाव सामने रखकर सम्पूर्ण कर्म करना है। जप, स्वाध्याय, ध्यान, पठन-पाठन कीर्तन जो कुछ भी करेंगे। यज्ञ दान और तप, जो भी करेंगे सबके कल्याण के लिए करेंगे। दुनिया मात्र के कल्याण के लिये करना है, कोई भी काम अपना नही करना है। अपना किया और भोग हुआ, दुनिया के लिये किया और योग हो गया।

"एषातेऽभिहिता साख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु"। अब तुम योग सुनो, ऐसे कहकर भगवान् ने कहा "बुद्धया युक्तो ययापार्थकर्मबन्धं प्रहास्यासि" इस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्म बन्धन का त्याग करेगा। तो इससे यह सिद्ध होता है कि इस बुद्धि के बिना कर्म बन्धन होता है।

अपने लिये करने से कर्म बन्धन होता है।

"भुंजते ते त्वघं पापा, ये पचन्त्यात्मकारणात्"। (गीता ३/१३)

अपने लिये पकाते खाते हैं वे पापी कोरा पाप का भक्षण करते हैं। अपने लिये भोजन बनाकर खाने वाले पापी केवल पाप का भक्षण करते है।

"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन :"। (गीता ३/९)

यज्ञार्थ से अन्यत्र सब कर्म बांधने वाले हैं।

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रंप्रविलीयते (गीता ४/२३)।

यज्ञ के लिये कर्म करे तो सब कर्म विलीन हो जायं। तो सब कर्म यज्ञ के लिये ही करें, (गीता ४।२३) लोगों के हित के लिए ही करें। यज्ञ के लिए अर्थात् सबके कल्याण के लिए ही करें। अपने लिये नहीं।

"देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्पर भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ" (गीता ३।११)।

परस्पर सब एक एक का कल्याण करें, वे उसका कल्याण करेंगे, वह उनका हित करेगा। ऐसा करने से सबका कल्याण होगा।

उदाहरण से समझो। एक मकान में एक जगह दो आदमियों को बैठा दिया। मकान को बंद कर दिया। भोजन की सब सामग्री सामने रख दी भोजन की सामग्री रखकर के दोनों के हाथों मे बांस की लकड़ी बांध दी गई। दोनों के हाथ मे कुहनी के पास ऐसे लकड़ी देकर बांध दी गई ताकि हाथ कुहनियों मे से मुड़ न सके, ऐसे कस के बांध दिये। भोजन सामग्री सब पड़ी है सामने पर खा सकते नहीं। कैसे करें ? अब दोनों ने विचार किया कि तू मेरे मुह मे दे दे और मैं तेरे मुंह मे दे दूं। हम लोग तो हाथ से उठाकर कोहनी मोड़कर खाते है, पर वे सीधे हाथों से एक दूसरे को दे दें तो दोनो का काम हो जाय, दोनों का भोजन हो जाय। ऐसे ही हमलोग भी यदि दोनों हाथों से दूसरो के हित के लिये देते रहे तो निहाल हो जायेंगे।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ भगवान् ने कहा कि ऐसे परस्पर करें तो परम कल्याण हो जाय। अतः घर मे स्त्री को सुख कैसे मिले। पुत्र को सुख कैसे मिले ? बच्चों को सुख कैसे मिले ? भाई का सुख कैसे मिले ? अपने सुख लेना नहीं है और उनसे आशा रखनी नहीं है। हम तो देवें सुख और वे देवें दुःख तो डबल (दूना) फायदा होगा। दुःख देने से हमारे पाप नष्ट हो जायंगे और हम सेवा करगे तो अन्तःकरण निर्मल हो जायेगा। इस वास्ते अपने यही देखें कि उनको सुख कैसे मिले ? जिनके साथ हमारा सबंध दीखता हो उनका हित कैसे हो ? यह धुन पकड ले। स्वार्थ करके देख हो लिया; अपने लिये करके देख हो लिया। उससे असली लाभ हुआ नहीं। अतः अब यह करके भी देखो इसमे भूल भी हो जाय तो घाटे की कोई बात नहीं। ऐसा करने से यह हो गया 'योग' इस वास्ते ऐसा करके देखें, सबके लिये करके देखें।

(१३) सांख्य और कर्मयोग—२

शरीर और संसार की एकता है। और स्वयं की तथा परमात्मा की एकता है। इस वास्ते अपने आपको तो भगवान् के चरणों मे सौप देना चाहिए तथा शरीर और सामग्री को जगत के हित मे लगा देना चाहिए। अपने साथ परमात्मा की अभेदता का अनुभव करना, ज्ञान का मार्ग है। अपने आपको भगवान् को सौप देना, भक्ति का मार्ग है। और ये शरोर सामग्री, मन, बुद्धि, धन सम्पत्ति सब ससार को सौप देना, कर्मयोग का मार्ग है। अतः ससार से अपने को लेना नहीं है। ससार से लेना नहीं है, कर्मयोग और परमात्मा को देना है भक्तियोग। संसार को ससार का अश दे दिया। प्रकृति का अश प्रकृति को दे दिया। परमात्मा का अंश परमात्मा को दे दिया। खाता डेढ़ा कर दिया तो फिर मौज ही मौज है। इस वास्ते जो कुछ भी करें ससार के लिए ही करें, अपने लिए न करें। ससार को अपना नहीं मानना है और ससार मे अपने लिए नहीं करना है। प्रभु को अपना मानना है—"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" मेरे तो परमात्मा हैं और कोई मेरा नहीं है। (मेरे तो परमात्मा है और कोई मेरा नहीं है) ससार सब प्रभु का है। हमारे पास ससार की जो चीजें हैं वे ससार को दे दें क्योंकि संसार परमात्मा का है। शरीर है, मन है, वाणी है, इन्द्रियाँ हैं, प्राण हैं, सामर्थ्य है, योग्यता है, जो कुछ भी हमारे पास है वह ससार से मिला है। पैदा भी ससार से हुआ है। योग्यता मिली है, वह भी ससार से। इस वास्ते ससार की है ही। अतः सबकी भलाई कैसे हो, उसकी सेवा कैसे हो, हर समय ही ऐसी चेष्टा रखे। सबका हित कैसे हो, "सर्वे भवन्तु सुखिनः"—सबकी सेवा मे अपनी सब सामग्री, सामर्थ्य लगा दें। उससे अधिक की आप पर जिम्मेवारी नहीं। लाखों करोड़ों रुपये वाले जिस तत्व को प्राप्त करेंगे, वही तत्व एक साधारण से साधारण को भी मिल जायेगा। कब? जब अपने पास कुछ है नहीं, जो कुछ अपने पास शरीर, इन्द्रियाँ आदि हैं, उन सबको सौप दिया, तब फिर उसको भी वही तत्व मिलेगा। बड़ा भारी सम्राट जिसके

पास संसोर की बहुत अधिक सामग्री है, उसे अपर्ण किया। और जिसके पास केवल शरीर है, वह अपने शरीर को संसार के अर्पण किया तो दोनों को (करोडपति और रंक को) एक ही तत्व मिलेगा। जो कुछ तुम्हारे पास है वह दे दिया, बस सामग्री थोड़ी, योग्यता थोड़ी, तो थोड़ी देने पर ही वह तत्व मिल जायेगा। अधिक योग्यता वाले अधिक मिलेगा, ऐसा नहीं है। ब्राह्मण बड़े माने जाते है, गीता मे उनके लिए नौ धर्म पालन करने बताये हैं—"शमो दमस्तपः शौच (गीता १८/४२)–क्षत्रिय के लिए सात, (गीता १८/४३) वैश्य के लिए तीन और शूद्र के लिए एक धर्म पालन बताया। (गीता १८/४४) जो ब्राह्मण को मिलेगा नौ से वह शूद्र को एक से ही मिल जायेगा। यानी जितनी शक्ति है उतनी लगा दो, भगवान् सब देखते हैं। भगवान् के घर में कमी नहीं है। अधिक दे दें तो अधिक, कम देगा तो कम मिलेगा ऐसा नहीं है। कमी तो है ही नहीं, उसके पास मे। जिसके पास जितना है उतना दे दिया तो भगवान् राजी हो जाते हैं। 'दे दिया क्या' — अपना नहीं माने। है ज्यों की त्यों मान लो। दक्षिणात्मक रामायण मे एक ऐसी कथा आती है, पढ़ा तो नहीं, सुना है। एक छोटा-सा जानवर गिलहरी होती है, वह एक तिनका लेकर भगवान् राम के पास गयी। कहने लगी मार दूँ रावण को। भगवान् खुश हो गये। उसको पीठ पर हाथ फेर दिया। कहते हैं कि गिलहरी के शरीर पर आज भी जो निशान देखे जाते है, वे भगवान् राम की अगुलियों के फेरे हुए निशानो के ही चिह्न है- उसकी सहायता से रावण मर गया, क्या? नहीं, पर अपनी सामर्थ्य लगा देने से भगवान् प्रसन्न हो गये। जैसे—आपका बच्चा अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर देवे तो आप प्रसन्न हो जायेंगे। ऐसे ही अपनी सामर्थ्य, योग्यता, शक्ति सब भगवान् के समर्पण कर देवें। तो भगवान् प्रसन्न हो जायेंगे। इतना जप करता है, इतना ध्यान करता है—परमात्मा के यहाँ इतने का अधिक मूल्य हो—ऐसा नहीं है तुम्हारे पास जितना है उतना दे दो। अपने आपको भगवान् को दे दो और भगवान् को ले लो— 'ये यथामां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'। (गीता ४/११) इसलिए केवल ससार के लिए ही काम करेंगे, अपने लिए करना है

ही नहीं। सब असीम भगवान् के लिए अर्पण कर दें तो असीम की प्राप्ति हो जावे, असीम की। इस वास्ते, अपने लिए कुछ न करें। भगवान् का भक्त भगवान् के लिए करता है। जप करें, पढ़ाई करें, ध्यान करें, स्वाध्याय करें, कीर्तन करें, उपवास करें दान करें, जो कुछ करें, सब कुछ भगवान् के लिये करें। जहाँ मजा लिया और फंसा। इस वास्ते सब तेरा है—"त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"। सब ससार के लिए है। जितना काम करें ससार के लिए। जप ध्यान भी ससार के लिए करे, या भगवान् के लिए करें, अपने लिए न करें। सब सेवा संसार के लिए करें। फिर कल्याण हो जायेगा। अपने लिए करके इतने दिन देख ही लिया। अब भगवान् के लिए करके देख लो, संसार के लिए करके देख लो। तो निहाल हो जाओगे।

"ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः" (गीता १२/४)

जिनके प्राणी मात्र का हित भरा है, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीडा सम नहिं अधमाई।" (उत्तर ४०/१)
'परहित बस जिन्हके मन माहिं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहिं।' (अरण्य ३०/६)

सबका हित हो, सबका कल्याण हो, सबका भला हो, ऐसा जो विचार करता है, वह बडा ऊँचा यानो भगवान् सरीखा हो जाता है। भगवान् भी कहते है— 'मम साधर्म्यमागताः' (गीता १४/२)

'सुहृदं सर्वभूतानाम्' (गीता ५/२६)

अपने लिए करना कुछ नहीं, तो वह कृतकृत्य हो जाय। जो अपने लिए करता है, वह कृतकृत्य नहीं होगा, उसका भला हो होता नहीं, कभी हुआ ही नहीं। इस वास्ते ससार को सामग्री ससार के लिये लगा दें। इस प्रकार ससार की सेवा कर देवें।

छोटे-बड़े, समान उम्र वाले इन सभी को आराम कैसे मिले? इनका हित कैसे हो? हर समय ऐसा विचार रखें। हमको जो कुछ मिला है वह सेवा करने के लिए मिला है। समय है, वह सेवा करने के लिए है।

गृहस्थाश्रम सेवाश्रम है। सेवा करो, शरीर से करो, पदार्थों से सेवा करो, बल-बुद्धि-योग्यता आदि से करो। बिना चाहे सेवा करें। तो भगवान् ऋणी हो जाते हैं। ऐसी सेवा से बड़ी शान्ति मिलेगी। आजकल तो प्रायः लोग कहते हैं कि अशान्ति है। पर ऐसी सेवा करें तो अशांति रहे ही नहीं। अशांति तो उनको मिलती है, जो कुछ लेना चाहते है। एक सन्त थे। वे कहते थे कि मैं एकान्त मे बैठा था। एक माई आई। माता जी ने आकर कहा केला लेंगे, केला। मैया क्या केला लें? हमारे तो मन मे उथल-पुथल मची हुई है। कहने लगी महाराज जिसको पकड़ा है, वह बात छोड़ दो, शांति हो जायेगी। वह केला भी दे गयी और अशांति भी दे गयी। मन मे गड़बड़ है उस बात को छोड दो। सेठ जी श्री जयदयाल जी गोयन्दका ने कहा था कि हमारी सब मन चाही ही होती है, हमारे तो मन से विपरीत होती ही नहीं। हमारी तो सब मन चाही ही होती है। कैसे? कि भगवान् की चाह मे ही अपनी चाह मिला दो। पहले कुछ सोचते ही नहीं, पीछे जो हो जाय। उसी मे मानते हैं कि हम ऐसा ही चाहते हैं।

"करी गोपाल की सब होई।" जो हो जाय वही हमारी चाह थी। अभी क्या चाह है। अभी कुछ नहीं। जो कुछ भी हो जाय वही हमारी चाह है। अन्यथा अपना विचार रखे नहीं। कैसी मौज की बात? मन चाहा तो होता है नहीं। उसे चाहने से सिवाय दुःख के, भटकने के, और कुछ नहीं है। अपनी चाह ही बड़ी बीमारी है। हो जाय वही होना चाहिए। नहीं होवे वह नहीं होना चाहिए। अशान्ति होगी ही नहीं।



(१४) 'हम भगवान् के हैं'

बड़ी सीधी, सरल और सच्ची बात है कि जो यहाँ जीने के दिन हैं वे प्रतिक्षण जा रहे हैं और उन दिनों के जाने के बाद जी सकें, ऐसा किसी मे बल नहीं। उसी क्षण यहां से जाना पडेगा। परन्तु ससार के कामों मे लगे हुए इतने भूल गये कि इधर ख्याल ही नहीं है। होश ही नहीं है। सच्ची बात है। इतना काम करगे, इतना ले लेंगे, इतना ले लिया है, इतना लाभ हो गया, इतना लाभ और हो जायगा-आदि बातों मे ही दिन-रात लगे हैं। थोडा सा विचार करें तो आदमी को चेत हो जाय "क्या लाभ लिया और क्या लाभ हो जायगा" ?

सुपना सा हो जावसी, सुत कुटुंब धन धाम।
हो रुचेत बलदेव नींद से जप ईश्वर का नाम॥

सब सुपना सा हो जायेगा। सुपना याद तो रहता है थोड़ी देर, यह याद तक नहीं रहेगा। इतना लाभ लिया। क्या लिया कि याद भी नहीं रहेगा। अगर याद रहने की रीति हो तो अभी हमारा जन्म है, इससे पहले जो जन्म था क्या वह याद है ? वह याद नहीं, तो यह भी याद नहीं रहेगा। यह याद कैसे रह जायगा। क्या यह बात (रिवाज) बदल गयी या बदल जायगा ? जिनके लिए इतना उद्योग, इतना परिश्रम कर रहे है, समय लगा रहे हैं, बुद्धि लगा रहे हैं और महान् कीमती आयु भी लगा रहे हैं, पर सोचते नहीं कि साथ मे क्या चलेगा ? साथ मे चलने वाली बढ़िया से बढ़िया चीज लेनी चाहिए। पर उसे न लेकर झूठ, कपट, ठगी, बेईमानी, धोखेबाजी, न जाने क्या क्या अनर्थ हैं, उन अनर्थों को कर रहे हैं। ऐसा जानते हैं कि यह पाप हैं, ये अन्याय है, ये ठीक नहीं हैं फिर भी वैसा ही कर रहे हैं।

मन जाने सब बात, जानबूझ औगुन (अवगुण) करें।
क्यों चाहत कुशलात कर दीपक कुएँ पडे। (सोरठा)

तो चेत करना चाहिए भाई कि, समय बहुत चला गया। बहुत अनर्थ कर लिये हैं। अब तो चेत करलें। परलोक सुधारने के लिए कुछ न कुछ पूंजी एकत्र कर लें, जो बढ़िया से बढ़िया हो। याद रखो, यह धन यहीं रह जायगा। यह कुटुंब, यह शरीर भी यहीं रह जायगा और अकेला जाना

पड़ेगा। पाप अन्याय किये हे न, वे साथ जायँगे, वे यहां नहीं रहेंगे। पाप करके कमाये हुए धन को तो लोग खायेंगे। पर पाप मे से थोड़ा भी हिस्सा नहीं लेंगे। वह अकेले अपने को खुद को ही भोगना पड़ेगा। इसलिए सावधान होकर अब जितना समय बचा है वह इधर लगा दें। सीधी-सरल बात है। **भगवान् को अपना मानलें और उसका नाम लें।** संसार अपना नहीं है भगवान् अपने है। इस वास्ते केवल उसको याद करो और उसे अपना मानो। इतने मात्र से भगवान् राजी हो जायं। अपना मानने मात्र से भगवान राजी हो जाते हैं क्योंकि अपने हैं। उनसे विमुख रहने से नुकसान के सिवाय कोई फायदा नहीं।

सन्मुख होई जीव मोंहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहि तबहीं॥
कोटि विप्र वध लागहि जाहीं। आयें शरण तजउंनहि ताही॥

भगवान् कहते हैं कि कोई जीव मेरे सम्मुख हो जाय मैं उसके सभी पापों का नाश करदूँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है। करोड़ो ब्राह्मणों की हत्या लगी है, वह भी मेरी शरण आ गया तो मैं उसका भी त्याग नहीं करूँगा और जब ही शरण हो जाय तब ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। पाप बेचारे टिक नहीं सकते। करोड़ों जन्मों के पाप पडे हुए, वे सबके सब मेरे सन्मुख होते ही खत्म हो जाते हैं। इस वास्ते सच्चे हृदय से भगवान् की तरफ हो जाय। "व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेका" (गीता २/४१)—अपने तो पक्का निश्चय कर लें कि अब तो अपने को भगवान् की तरफ हो चलना है। अब जो काम आपका न्याययुक्त हो, धर्मयुक्त हो वह काम करो। उससे जो मिल जाय निर्वाह करो। अब अत्याचार, अनाचार, दुराचार कभी नहीं करेंगे। और वह न्याययुक्त-धर्मयुक्त काम भी करो भगवान् का। हे नाथ! 'आपका काम, आपका यह कुटुम्ब और आपका ही यह शरीर है, ऐसे समझ कर भगवान् का काम करो। फिर वही काम भगवत् भजन हो जायगा। केवल अपने अहं को बदल दिया कि मैं भगवान् का हूं और भगवान् का काम कर रहा हूं। अब अन्याय, झूठ, कपट तो करें नहीं, शुद्ध-सात्विक काम करें क्योंकि भगवान् का काम है। कैसे हो? नाम लेता रहे-'राम-राम-राम-राम राम-राम, हर समय। काम-धन्धा करते हुए भी सोते-जागते चलते फिरते हुए

हर समय भगवान् के नाम का जप करते रहें और उन्हे अपना मानें। और जो भी काम संसार का करें और उस काम को भगवान् का मानें। भगवान् अपने हैं। काम-धन्धा, कुटुंब, परिवार, शरीर सहित सब परमात्मा के हैं। सच्ची बात है। अपने हैं नहीं। अपने हों तो इनको हम ठीक कर लें, पर हाथ की बात नहीं है। शरीर को जीता रखलें, है हाथ की बात ? हाथ की बात हो तो इसको निरोग रखलो, इसको बलवान रखलो। यह हमारा नहीं है। यह उसी का है। उसी के हैं हम। उसी का काम करते हैं हम तो। वही हमारे हैं और हमारा कोई है नहीं। ऐसा मानते हैं और उसका नाम लेते हैं। और उसका काम करते हैं, बडे उत्साह से।

हम भगवान् के हैं आज से यह बात मानलें तो आपने आज काम कम नहीं किया। बहुत बड़ा भारी काम कर लिया। सच्चे दिल से मान लें कि हम भगवान् के हैं। किसी को अपना मानना और किसी को अपना नहीं मानना इसमे कोई भी प्राणी-पदार्थ पराधीन नहीं है, फिर मनुष्य तो पराधीन ही होगा क्यों ? वह इसमे पराधीन क्यों होगा। कोई भी प्राणी 'यह मेरा है', 'यह मेरा नहीं है'-ऐसा मानने मे स्वतन्त्र है। अपने घरों की गाय आप रखते हो और फिर बेच देते हो तो एक, दो, चार दिन आपके यहां भी आ जायगी। किन्तु फिर वहां ही रहने लग जायगी। फिर भूल चूक कर भी आपके यहां नहीं आवेगी। क्योंकि उसे पता लग गया कि हमारा घर यही है; वह घर हमारा नहीं है। तो यह पशु को भी स्वतत्रता है कि किसी को अपना मानें और किसी का अपना न मानें। अपने को तो अनुभव है ही, आपकी कन्या विवाह करने के बाद जिस घर मे विवाह हुआ उस घर को अपना मानती है। आप गोद चले जाते हैं तो उस घर को अपना मानने लग जाते हो। ये साधु हैं, जिस सम्प्रदाय के हो जाते हैं उसी सम्प्रदाय को, उसी गुरूजी को अपना मानने लग जाते है। अब पहले वाला अपना नहीं है। ऐसे ही संसार अपना नहीं है, भगवान् अपने हैं। माना हुआ भी अपना दीखने लग जाता है, जबकि दूसरी ओर आपने जन्म लिया वह भी आपको अपना नहीं दिखता। "तो ससार अपना नहीं है और भगवान् अपने हैं।" ऐसा पक्का मान लेने पर फिर भगवान् अपने क्यों नहीं

देखेगे ? संसार अपना नहीं है क्यों नहीं दीखेगा ? आपका विचार पक्का हो गया तो वैसा हो दीखेगा। इसमे आप स्वतन्त्र हैं, बिल्कुल। इसमें किसी के भी पराधीन नहीं हैं। इसमे आप निर्बल नहीं हैं। इसमे आप अयोग्य नहीं हैं। इसमें आप हम अनाधिकारी नहीं हैं, बिलकुल।

और यह ससार हमारा नहीं है यह प्रत्यक्ष अनुभव है। कितना दिन रहना होगा, इसका पता नहीं ? यहाँ से जाना होगा, इसमे बिलकुल सन्देह नहीं। और छोड़ जाने के बाद न तार है, न चिट्ठी है, न समाचार है, कुछ पता नहीं। हमारे सामने चले गये, वे सदा के लिए ही चले गये। वैसी ही दशा हमारी होने वाली है, बिल्कुल। रच मात्र भी फरक नहीं है। जो हमारा है उससे पहिचान करो—"नारायण वृजराज कुंवर सो वेगिहि कर पहिचान।" हमारा है उसको पहचान करो और जो हमारा नहीं हैं, उनको सेवा कर दो। उनसे पिंड छुड़ाओ। उनकी आशा मत रखो। सेवा जितनी भी आप से उत्तम हो सके, उतनी सेवा करो। पर ये हमे निहाल करेंगे, यह आशा कभी मत करो। वह अपने आपको भी निहाल नहीं कर सकते फिर आपको क्या निहाल करेंगे ? इस वास्ते, सच्चे हृदय से उनकी आशा का त्याग कर दो।

प्रश्न :—भागते भागते गोड़ा दुःखवा लग जावे। क्या करें ?

उत्तर :—भाई! भागो तो सच्चे रास्ते भागो। ऐसा कामही क्यों करा ? दौड़ो, तो, चोखी जगह दौड़ो। भगवान की तरफ दौड़ो। और ससार (घर) के कामों मे जो दौड़ते हो, आज से यही मान लो कि हम भगवान् की तरफ दौड़ रहे हैं। खेत का काम भगवान् का कर रहे हैं। घर का काम भगवान् का कर रहे हैं। नाम लेते रहो और काम को भगवान् का मानते रहो। इतनी सी बात है। यह आपका दौड़ना है न, यह सफल हो जावेगा। बिल्कुल थोड़ा सा भाव बदल दो। गाड़ी एक ही प्लेटफार्म पर खड़ी है। पाइंट बदल देते हैं। कहीं जाने वाली गाड़ी कहीं चली जाती है। ऐसे ही यह है। यह बदल दो कि भगवान् का काम है और मैं भगवान् का हूँ और नाम भगवान् का लेते रहे बस लाईन बदल गयी। फिर सब काम ठीक। 'धावन् निमील्यमेत्रे नपतेत् न

खेलनिह'' इस रास्ते मे आंख भीच कर दौड़ो, न पड़ता है न फिसलता है। "निष्कटक पन्थाः" यह निष्कंटक रास्ता है ऐसा बढ़िया रास्ता है। इस वास्ते भगवान् का काम करते हैं, भगवान् का नाम लेते हैं 'राम राम-राम-राम-राम राम'। इस बात को हृदय में धारण करलें आज। आज से ऐसा ही करना है और दृढ़ रहे इस बात पर। फिर संसार के काम मे कोई बाधा नहीं लगेगी। पाप, अन्याय. झूठ-कपट नहीं कर। उससे जो बाधा लगे वह सह लो। लोग उपवास करते हैं; व्रत करते हैं, धर्म के लिए कष्ट सह लेते हैं। ऐसे ही आपलोग भी इसे सह लो। पाप-अन्याय करने से जो धन मिले वह नहीं लेना है। घाटा भी सहना पड़े तो सह लो। बस, एक इतनी सी बात है और ज्यादा तकलीफ नहीं। और पाप करते भी आफत आयेगी तो सहन करनी पड़ेगी कि नहीं। वह भी सहन करनी पड़ेगी तो इसे भी सह लो।

नारायण नारायण नारायण



"कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनि योनि जन्मसु"। (गीता १३/२१) गुणों के सङ्ग से ऊँच नीच योनियों मे जन्म होते रहते हैं। जन्म होने का कारण गुणों का संग है। अगर वह संग न करें अर्थात् उनके साथ अपने को न मिलावें तो हम मुक्त है सदा, बिल्कुल इस वास्ते अभी इसी क्षण से अपने को उसके साथ मिलावें नहीं। अपने को अलग अनुभव करें।

और अलग अनुभव करने में बड़ी सीधी बात है कि इसका जो सयोग है प्रकृति और प्रकृति के कार्य संसार से, इसका वियोग तो प्रतिक्षण हो हो रहा है। अब प्रतिक्षण जिसका वियोग हो रहा है, उससे अपने को वियुक्त करना है। इसका वियोग स्पष्टतः हो ही रहा है और हम इससे अलग हैं ही। इसमे ऐसा अनुभव करना है कि इसका वियोग हो रहा है, इतनी ही बात है। ये प्रतिक्षण बिलग हो रहा है। अलग होने वाले की तरफ से दृष्टि उठा लें, बस। और दृष्टि को अपने स्वरूप मे रख लें। चाहे परमात्मा हैं और यह नहीं है ऐसा मान लें। ऐसे बहते के साथ न बह कर रहते के साथ रह जाय, इतनी ही बात है। संसार के साथ एकता न मानकर जो हरदम रहता है उस परमात्मा के साथ रह जायं, इतनी ही बात है। कितनी सुगम बात है कितनी सरल बात है? संतों ने बड़ी सीधी बात सरल वाणी मे कह दी कि रहता रूप सही कर राखो, बहते संग न बहो जे। "रहते" और "बहते" दो शब्दों में कितनी विलक्षण बात है। रहते के साथ 'सही' कर राखो। 'सही' का मतलब है जो 'है' वह है ही। इसका सही मानो, इसको गलत मत मानो। और 'बहते संग न वहीजे' बहते के साथ मत बहो। संत कहते हैं—अनाराम ऐसो होई खोजे, तब जाय अलख लखीजे। ऐसो बात बताई। इतनी ही बात है।

शरीर बदल रहा है। संसार बदल रहा है। मैं नहीं बदल रहा हूं। मैं हूं। मेरा जो "होनापन" है, वह नहीं बदलता है। अब बदलने मे आप मानो कि मैं बालक हूं मैं बूढ़ा हूं मैं जवान हूं, मैं धनी हूं मैं निर्धन हूं तो आपने उन बदलने वालों के साथ 'हूं' को मिला दिया। हूं क्या? कि जो सत्ता है, जो "होनापन" है वह ज्यों का त्यों है। बहता तो बदलता है,

इसके साथ मिलाने से। परन्तु आधार जो हमारा "होनापन" है उसमें परिवर्तन नहीं है। उस "होनापन" का ज्ञान अपने आपको है। और बदलने का जो ज्ञान-संसार का ज्ञान है वह स्वयं से नहीं होता, इन्द्रियों के द्वारा, बुद्धि के द्वारा होता है। बदलने वाले का ये ज्ञान तो 'द्वारा' से होता है जैसे—हम देखेंगे तो आंख के द्वारा देखेंगे, शब्द को कान के द्वारा सुनेंगे, बोलेंगे तो जबान के द्वारा बोलेंगे। तो ये जो करना और देखना है, इनमें करने मे तो कर्मेन्द्रिय की प्रधानता है, और देखने में ज्ञानेन्द्रिय की प्रधानता है। और जानने में बुद्धि की प्रधानता है। परन्तु अपना होनापन को जानने मे किसी की जरूरत नहीं है न कर्मेन्द्रियों की जरूरत है, न ज्ञानेन्द्रियों की जरूरत है, और न बुद्धि की जरूरत है। इसमें किसी इन्द्रियों मन-बुद्धि की जरूरत नहीं; यह जानना तो अपने आप से है। इसमे किसी की सहायता किंचित्मात्र भी नहीं। "मैं हूँ" इसमे किसकी सहायता की आवश्यकता नहीं है। यह बात बताई। आंख, कान, जबान आदि ज्ञानेन्द्रियों को अथवा हाथ-पेर आदि कर्मेन्द्रियों को अथवा किसी शास्त्र की अथवा किसी और मनुष्य को गवाही देनी पडेगी क्या कि मैं हूँ? इसमे किसी के सहारे की बात नहीं है। उस "मैं हूँ"—उसमे केवल सत्ता-मात्र। अपना 'होना' मात्र। इसी को अपने आप जानना कहते हैं।

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।"

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।। (गीता २/५५")

"आत्मनि एव आत्मना तुष्टः"—अपने से ही अपने में संतुष्ट। "ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिद् आत्मानमात्मना"। (गीता १३/२४) "आत्मना आत्मनि पश्यति" "यत्रोपरमतेचित्त निरूद्धं आत्मानम् योगसेवया। यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति'। (गीता ६/२०) वह अपने आपसे अपने में देख के अपने मे ही संतुष्ट है। श्रुत्वाप्येनम् वेद न चैव कश्चित्—सुनकर भी इसकोकोई नहीं जानता। (गीता २/२८) पर अपने से अपने आप ही जानकर संतुष्ट होता है, पश्यन् आत्मनि तुष्यति। (गीता ६/२०) यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः

(१५) स्वयं का स्वरूप

प्रायः विचार रहता है कि हमारे मन की हो जाय तो आनन्द हो जाय। मनुष्य अपने मन की बात करना चाहता है इसका ही नाम कामना है। धन की कामना, मान की, बडाई की, जीने आदि की कामना भी कामना है। परन्तु इन कामनाओं मे मूल कामना क्या है कि मेरे मन की बात हो जाय, बस, एक बात। इस जगह अगर यह बात करले कि औरों के मन की बात हो जाय तो निहाल हो जाय। मनुष्य का स्वभाव है कि अपने मन की बात पूरी करना चाहता है और अपने मन की होने से राजी होता है। इसका नाम कामना है। इसका अर्थ कोई ऐसा न समझे कि मैं तो कामना का त्यागी हूं और आपके कामना है, ऐसा मतलब नहीं है। बात याद आ गयी, वह कह दी। यह मैंने पहिले सोचा नहीं था किन्तु जब यह कहा गया कि तुम्हारे मन मे कुछ बात आयी हो वह कहो, तो यह बात मन मे आयी।

मन की बात करना बढ़िया नहीं है। तो, अपने मन की बात न करके औरों के मन की बात करता चला जाय तो निहाल हो हो जायगा। उसमें केवल इतनी बात है कि उसकी बात न्याय युक्त हो और अपने सामर्थ्य मे आती हो, ये दो बातों का ख्याल कर लेना। वह हमारे से जो कुछ चाहते हैं वह न्याय युक्त, धर्मयुक्त, समाज, शास्त्र आदि के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। और हम उसकी चाहना पूरी करने मे समर्थ हैं—तो दूसरे की मन की बात पूरी करें। अगर यह जीवन मे व्रत ले लें, नियम ही करलें तो निहाल हो जायँ। सीधी सादी बात है उसकी बात न्याययुक्त हो और हमारी सामर्थ्य से बाहर न हो तो उसके करने मे क्या बाधा लगेगी ? हम नहीं कर सकते है वह तो करना नहीं है और हमे नहीं करना चाहिए, वह भी करना नहीं हैं। करना नहीं चाहिए वह वास्तव मे समाज विरुद्ध है. शास्त्र विरुद्ध है, नीति विरुद्ध है। इस वास्ते वह करना नहीं चाहिए। करने की सामर्थ्य से बाहर है, वह कर ही नहीं सकते। उसे भी करना नहीं है। तो क्या करना है ? औरों की न्याय युक्त बात उसके अनुसार हमे कर देना है। जितना कर सकते हैं, उतना करना ही है। इसमे कोई परतन्त्र नहीं है। कोई इसमे पराधीन नहीं है। कोई अपात्र नहीं है। कोई अयोग्य नहीं है। सभी योग्य हैं और ऐसा करने से सभी निहाल हो जायेंगे। पर यह बहुत ऊँची बात है और बड़ी सरल बात है।

आप हम अपने अनुभव को तरफ विचार करें। बालकपन से लेकर अभी तक जितनी अवस्था बदली और घटनाएं बदली तथा तरह तरह की बातें बदलीं, इस बदलने मे 'मैं' तो वही हूं जो बालक अवस्था मे था। और शरीर वैसा नहीं है यह बदल गया। संसार मे विचार कर देखें तो वह ससार भी बहुत बदल गया। इस बदलने की तरफ दृष्टि डाली जाय तो मालुम पड़ता है कि आप की और हमारी उमर मे भारतवर्ष का, ससार का जितना परिवर्तन हुआ है, किसी की उमर मे शायद ही ऐसा परिवर्तन हुआ होगा? इतना परिवतन आपके-हमारे सामने हुआ है। बहुत भारी परिवर्तन हुआ है देश, काल, कर्म सबका एक ही उमर मे इतना परिवर्तन। वैसे तो परिवर्तन सबकी उमर मे होता है। प्रतिक्षण होता है। प्रतिक्षण बदलता है। तो, प्रतिक्षण जो परिवर्तन होता है, जो बदलता है और हमारा परिवर्तन होता नहीं कभी, किसो क्षण भी हम बदलते नहीं वह हम 'है' ज्यों के त्यों रहते हैं इस वास्ते इन दोनों को मिलाए नहीं। इतनी ही बात है। बदलने का विभाग अलग है और न बदलने का विभाग अलग है। इसमें जो न बदलने का विभाग है उसमे अपने आपको स्थित कर देना यह ज्ञान है। और बदलने वाले के साथ अपने को मिला देना, इसका नाम अज्ञान है। अज्ञान से जन्म-मरण होता है; महान् दुःख, संताप, सकट होता है। इसी को बधन कहते हैं। उस परिवर्तन के साथ अपने को न मिला करके उसे अपने को अलग करके अनुभव कर लें, इसका नाम मुक्ति है, कल्याण है, उद्धार है। ऐसा अनुभव होने पर सदा के लिये सुखी, हो जावागे महान् सुखी, महान् आनन्द हो जायगा। किसी बात की किंचित् मात्र भी किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी।

इसमें गलती क्या होती है कि बदलने वाले के साथ अपने को मिला लेते हैं और अपने को बदलने वाला मान लेता है। यह गलती है। तो, मैं तो वही हूं जो पहले था। अनन्त जन्मों मे रहने वाला मैं वही हूं। और ये जन्म जो बार-बार होते रहे है, इसमें क्या है? कि जो प्रकृति के गुण हैं उनके साथ एकता कर लेते हैं, इसको कहते हैं गुणों का संग।

"कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनि योनि जन्मसु"। (गीता १३/२१) गुणों के सङ्ग से ऊँच नीच योनियों मे जन्म होते रहते हैं। जन्म होने का कारण गुणों का संग है। अगर वह संग न करें अर्थात् उनके साथ अपने को न मिलावें तो हम मुक्त हैं सदा, बिल्कुल इस वास्ते अभी इसी क्षण से अपने को उसके साथ मिलावें नहीं। अपने को अलग अनुभव करें।

और अलग अनुभव करने मे बड़ी सीधी बात है कि इसका जो सयोग है प्रकृति और प्रकृति के कार्य संसार से, इसका वियोग तो प्रतिक्षण हो ही रहा है। अब प्रतिक्षण जिसका वियोग हो रहा है, उससे अपने को वियुक्त करना है। इसका वियोग स्पष्टतः हो ही रहा है और हम इससे अलग हैं ही। इसमे ऐसा अनुभव करना है कि इसका वियोग हो रहा है, इतनी ही बात है। ये प्रतिक्षण बिलग हो रहा है। अलग होने वाले की तरफ से दृष्टि उठा लं, बस। और दृष्टि को अपने स्वरूप मे रख लें। चाहे परमात्मा हैं और यह नहीं है ऐसा मान लें। ऐसे बहते के साथ न बह कर रहते के साथ रह जायं, इतनी ही बात है। संसार के साथ एकता न मानकर जो हरदम रहता है उस परमात्मा के साथ रह जाय, इतनी ही बात है। कितनी सुगम बात है कितनी सरल बात है? सतों ने बड़ो सीधो बात सरल वाणी मे कह दी कि रहता रूप सही कर राखो, बहते संग न बही जे। "रहते" और "बहते" दो शब्दों मे कितनी विलक्षण बात है। रहते के साथ 'सही' कर राखो। 'सहो' का मतलब है जो 'ह' वह है ही। इसका सही मानो, इसको गलत मत मानो। और 'बहते संग न बहीजे' बहते के साथ मत बहो। संत कहते हैं—अनाराम ऐसो होई खोजे, तब जाय अलख लखीजे। ऐसो बात बताई। इतनो ही बात है।

शरीर बदल रहा है। संसार बदल रहा है। मैं नहीं बदल रहा हूँ। मैं हूँ। मेरा जो "होनापन" है, वह नहीं बदलता है। अब बदलने मे आप मानो कि मैं बालक हूं मैं बूढ़ा हूं मैं जवान हूं, मैं धनी हूं मैं निर्धन हूँ तो आपने अब इन बदलने वालों के साथ 'हूँ' को मिला दिया। हूं क्या? कि जो सत्ता है, जो "होनापन" है वह ज्यों का त्यों है। अहता तो बदलती है,

इसके साथ मिलाने से। परन्तु आधार जो हमारा "होनापन" है उसमें परिवर्तन नहीं है। उस "होनापन" का ज्ञान अपने आपको है। और बदलने का जो ज्ञान-संसार का ज्ञान है वह स्वयं से नहीं होता, इन्द्रियों के द्वारा, बुद्धि के द्वारा होता है। बदलने वाले का ये ज्ञान तो 'द्वारा' से होता है जैसे—हम देखेंगे तो आंख के द्वारा देखेंगे, शब्द को कान के द्वारा सुनेंगे, बोलेंगे तो जबान के द्वारा बोलेंगे। तो ये जो करना और देखना है, इनमें करने में तो कर्मेन्द्रिय की प्रधानता है, और देखने में ज्ञानेन्द्रिय को प्रधानता है। और जानने में बुद्धि की प्रधानता है। परन्तु अपना होनापन को जानने मे किसी की जरूरत नहीं है न कर्मेन्द्रियों की जरूरत है, न ज्ञानेन्द्रियों की जरूरत है, और न बुद्धि की जरूरत है। इसमें किसी इन्द्रियों मन-बुद्धि की जरूरत नहीं; यह जानना तो अपने आप से है। इसमे किसी की सहायता किंचितमात्र भी नहीं। "मैं हूँ" इसमे किसकी सहायता की आवश्यकता नहीं है। यह बात बताई। आँख, कान, जबान आदि ज्ञानेन्द्रियों को अथवा हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियों को अथवा किसी शास्त्र की अथवा किसी और मनुष्य को गवाही देनी पडेगी क्या कि मैं हूँ? इसमे किसी के सहारे की बात नहीं है। उस "मैं हूँ"—उसमे केवल सत्ता-मात्र। अपना 'होना' मात्र। इसी को अपने आप जानना कहते हैं।

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।"

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ (गीता २/५५")

"आत्मनि एव आत्मना तुष्टः"—अपने से ही अपने में संतुष्ट। "ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिद् आत्मानमात्मना"। (गीता १३/२४) "आत्मना आत्मनि पश्यति" "यत्रोपरमतेचित्त निरूद्धं आत्मानम् योगसेवया। यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति'। (गीता ६/२०) वह अपने आपसे अपने मे देख के अपने में ही संतुष्ट है। श्रुत्वाप्येनम् वेद न चैव कश्चित्—सुनकर भी इसकोकोई नहीं जानता। (गीता २/२८) पर अपने से अपने आप ही जानकर संतुष्ट होता है, पश्यन् आत्मनि तुष्यति। (गीता ६/२०) यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः

आत्मन्येव च संतुष्ट स्तस्य कार्यं न विद्यते। (गीता ३/१७) फिर इस प्रकार की वृत्ति हो जायेगी। योन्तः सुखोऽन्तरारामः स्तथान्तः रेव यः। सयोगी ब्रह्म निर्वाण ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति। (गीता ५/२४) "ब्रह्म निर्वाण गच्छति"—वह निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। इसे अपने आप ही जानना है, किसी अन्य की सहायता से नहीं।

इस वास्ते हर एक भाई ख्याल करें। मैं आपको अयोग्य नहीं मानता। आपको अनधिकारी नहीं मानता। आप इसको नहीं जान सकते, ऐसा नहीं मानता। किन्तु यह बात कही थी कि आप इसकी परवाह नहीं करते हैं। इधर आप ख्याल नहीं करते हैं। जानने की उत्कण्ठा नहीं कि इसे जान लें। केवल इस एक भूख की जरूरत है कि हम इस तत्व को जानें, और किसी चीज की जरूरत नहीं। कैसे जानें? क्या करें? कहाँ जावें? कैसे जानू? किससे पूछें? इस तत्व को जानें, केवल ऐसी लालसा चाहिए। और कोई मूल्य चुकाने की जरूरत नहीं है। यह बात मन मे आई, सो बात बता दी। मन मे और भी बहुत से श्लोक आये थे—

"तत्ववित्तु महाबाहो 'नेव किंचित् करोमीतियुक्तो मन्येत् तत्ववित्" (गीता ५/८)

"कर्ताहमिति मन्यते" (गीता ३/२७) "इति मत्वा न सज्जते' (गीता ३/२८) ऐसे श्लोक याद आये। तात्पर्य यही था, बात यही थी। इसमे आपके कोई बात अटकती है क्या? कोई बाधा लगती है क्या? यह तो एक दम आसान बात है।



(१६) व्यवसायात्मिका बुद्धि

भगवान् ने गीता मे दो निष्ठाओं का वर्णन किया है एक सांख्य निष्ठा है और एक योगनिष्ठा है। मानो एक ज्ञान योग है और एक कर्मयोग है। कर्मयोग के विषय मे बात कही गयी है कि—"व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका" (गीता २/४१) बुद्धि एक है। ज्ञान निष्ठा की बात मे ऐसी बात नहीं कही गयी क्योंकि ज्ञान मे, जब ज्ञान हो जाता है, बोध हो जाता है ठीक अपने स्वरूप का, तब उसकी बुद्धि स्वतः स्थिर हो जाती है। स्वाभाविक ही बुद्धि का एक निश्चय रहता ही है। वह मिटता ही नहीं है। परन्तु कर्मयोग मे जब यह निश्चय पक्का हो जाता है तो स्वरूप का बोध हो जाता है। इस वास्ते इस विषय मे कहते हैं कि बुद्धि एक होनी चाहिए। "व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका" इसमे (कर्मयोग मे) निश्चय वाली बुद्धि एक ही होती है। एक बुद्धि किसमे होती है, कर्मयोग मे।

"कर्मयोग क्या है" यह व्याख्या आज करना है। कर्मयोग उसका नाम है मूल मे कि संसार से मेरे को कुछ नहीं लेना है यहाँ से कर्मयोग शुरू होता है। जब तक ससार से कुछ भी लेना है तब तक कर्म होते हैं कमयोग नहीं। कर्मयोग मे कर्म और योग दो शब्द हैं कर्म नाम है ससार का कार्य करना। सांसारिक काम करते हैं ? उसको कर्म कहते हैं। योग नाम है परमात्मा के साथ जो हमारा अटल संबंध है, परमात्मा' के साथ जीव का सबध स्वतः है, स्वाभाविक है "ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः"। (गीता १५/७) यह साक्षात् परमात्मा का अंश है। और परमात्मा के साथ हरदम रहता है। इससे परमात्मा अलग नहीं होता और यह परमात्मा से अलग नहीं होता ऐसा इनका नित्य योग है। फिर प्रश्न होता है कि इस नित्य योग का वियोग कैसे हो गया ? संसार के साथ सबध मान लिया इससे परमात्मा से नित्य सम्बन्ध रहते हुए भी वियोग हो गया। वियोग नहीं हुआ है, अलग

आत्मन्येव च सतुष्ट स्तस्य कार्यं न विद्यते। (गीता ३/१७) फिर इस प्रकार की वृत्ति हो जायेगी। योन्तः सुखोऽन्तरारामः स्तथान्तः रेव यः। सयोगी ब्रह्म निर्वाण ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति। (गीता ५/२४)

"ब्रह्म निर्वाण गच्छति"—वह निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। इसे अपने आप ही जानना है, किसी अन्य की सहायता से नहीं।

इस वास्ते हर एक भाई ख्याल करें। मैं आपको अयोग्य नहीं मानता। आपको अनधिकारी नहीं मानता। आप इसको नहीं जान सकते, ऐसा नहीं मानता। किन्तु यह बात कही थी कि आप इसकी परवाह नहीं करते हैं। इधर आप ख्याल नहीं करते हैं। जानने को उत्कण्ठा नहीं कि इसे जान लें। केवल इस एक भूख की जरूरत है कि हम इस तत्व को जानें, और किसी चीज की जरूरत नहीं। कैसे जानें? क्या करें? कहाँ जावें? कैसे जानू? किससे पूछें? इस तत्व को जानें, केवल ऐसी लालसा चाहिए। और कोई मूल्य चुकाने की जरूरत नहीं है। यह बात मन मे आई, सो बात बता दी। मन मे और भी बहुत से श्लोक आये थे—

"तत्ववित्तु महाबाहो 'नैव किंचित् करोमीतियुक्तो मन्येत् तत्ववित्" (गीता ५/८)

"कर्ताहमिति मन्यते" (गीता ३/२७) "इति मत्वा न सज्जते' (गीता ३/२८) ऐसे श्लोक याद आये। तात्पर्य यही था, बात यही थी। इसमें आपके कोई बात अटकती है क्या? कोई बाधा लगती है क्या? यह तो एक दम आसान बात है।



(१६) व्यवसायात्मिका बुद्धि

भगवान् ने गीता मे दो निष्ठाओं का वर्णन किया है एक सांख्य निष्ठा है और एक योगनिष्ठा है। मानो एक ज्ञान योग है और एक कर्मयोग है। कर्मयोग के विषय मे बात कही गयी है कि—"**व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका**" (गीता २/४१) बुद्धि एक है। ज्ञान निष्ठा की बात मे ऐसी बात नहीं कही गयी क्योंकि ज्ञान मे, जब ज्ञान हो जाता है, बोध हो जाता है ठीक अपने स्वरूप का, तब उसकी बुद्धि स्वतः स्थिर हो जाती है। स्वाभाविक ही बुद्धि का एक निश्चय रहता ही है। वह मिटता ही नहीं है। परन्तु कर्मयोग मे जब यह निश्चय पक्का हो जाता है तो स्वरूप का बोध हो जाता है। इस वास्ते इस विषय मे कहते हैं कि बुद्धि एक होनी चाहिए। "**व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका**" इसमे (कर्मयोग मे) निश्चय वाली बुद्धि एक ही होती है। एक बुद्धि किसमे होती है, कर्मयोग में।

"कर्मयोग क्या है" यह व्याख्या आज करना है। कर्मयोग उसका नाम है मूल मे कि संसार से मेरे को कुछ नहीं लेना है यहाँ से कर्मयोग शुरू होता है। जब तक ससार से कुछ भी लेना है तब तक कर्म होते हैं कमयोग नहीं। कर्मयोग मे कर्म और योग दो शब्द हैं कर्म नाम है ससार का कार्य करना। सांसारिक काम करते हैं? उसको कर्म कहते हैं। योग नाम है परमात्मा के साथ जो हमारा अटल संबंध है, परमात्मा के साथ जीव का संबंध स्वतः है, स्वाभाविक है "**ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः**"। (गीता १५/७) यह साक्षात् परमात्मा का अंश है। और परमात्मा के साथ हरदम रहता है। इससे परमात्मा अलग नहीं होता और यह परमात्मा से अलग नहीं होता ऐसा इनका नित्य योग है। फिर प्रश्न होता है कि इस नित्य योग का वियोग कैसे हो गया? संसार के साथ सबंध मान लिया इससे परमात्मा से नित्य सम्बन्ध रहते हुए भी वियोग हो गया। वियोग नहीं हुआ है, अलग

नहीं हुआ हैं अपितु विमुख हुआ है विस्मृति हुई है। उससे अलग नहीं हुआ है, परन्तु ससार की तरफ मुख कर लिया है और इसके (संसार के) साथ मिल गया है। संसार के साथ भी मिल नहीं गया है, अपितु संसार के साथ अपना मिलना मान लिया है। और परमात्मा से भी अलग नहीं हुआ है अपितु परमात्मा से अलग मान लिया है। यह मान्यता कब तक रहेगी ? जब ससार से वियोग हो जायगा और भगवान् के साथ संयोग की मान्यता हो जायगी, तब यह मान्यता जायेगी। भाइयों यह बात अपने मे मानी हुई है। परमात्मा से वियोग माना हुआ है। संसार से अपना सयोग माना हुआ है। अतः जब यह माना हुआ मिट जायगा तो जो "है" वह रह जायगा। तो सार आया कि ससार से वियोग होने पर वह योग होता है। इस वास्ते गीता मे कहा 'तं विद्याद् दु ख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्"। गीता ६/२३) योग' मे दुःखो के संयोग का वियोग है। योग मे, वियोग है, दुःखों के सयोग का, संसार के सयोग का प्रकृति के कार्य का सयोग दुखों का संयोग है। इस संयोग से वियोग होना 'योग' हो जाता है भगवान् के साथ

प्रश्न :—संसार से वियोग कैसे हो ? तो कहते हैं कि संसार से हमें कुछ नहीं लेना है तो ससार से वियोग हो जाता है। यह बात है। ससार से लेना नहीं है, अपितु देना है, देना क्या है ? जितना लिया है, वह देना है। आज से ही पक्का निश्चय करलें कि ससार से जो लिया है वह देना-देना ही रहा है, लेना हमे नहीं है किसी से। मां-बाप से लिया है तो मां-बाप को वापस देना है। स्त्री-पुरुष से लिया तो उन्हे देना है। भाई-भौजाई से लिया है तो भाई-भौजाई को देना है। और तो क्या-शरीर से भी आराम लिया है तो शरीर को भी देना है। उसको खिलाना-पिलाना मानो इसको देना है। शरीर से हम सुख ले लेंगे, यह नहीं। लेना है ही नहीं किसी से भी हमे क्योंकि वुद्धि एक है। त्याग की वृत्ति है। 'व्यवसायात्मिका बुद्धि एका"—एक निश्चयात्मिक वुद्धि मे त्याग है। इस वास्ते इस कर्मयोग का नाम त्याग बताया है। निश्चय ही हमे संसार से कुछ लेना नहीं है क्योंकि आजतक संसार से लेते रहे तो कभी तृप्ति का अनुभव नहीं हुआ।

और आगे कभी नहीं होगा। इतनी ही नहीं संसार से तृप्ति का अनुभव किसी को नहीं हुआ। संसार से कभी किसी की तृप्ति नहीं हुई, नहीं है और नहीं होगी, और हो सकती भी नहीं। कारण यह कि यह परमात्मा का अंश नित्य है और ससार है अनित्य, क्षणभगुर। तो नित्य को तृप्ति अनित्य से कैसे हो जायगी ? इस वास्ते इसकी तृप्ति होने वाली है ही नहीं। तो क्या करना है कि अब इससे लेने की आशा ही नहीं रखना है। भीतर से ही इसका सम्बन्ध छूट जायगा तो तृप्ति हो जायगी रोजाना के लिए। फिर कभी भूख नहीं रहेगी। कभी किंचित्मात्र नहीं रहेगी। इसके लिए सबसे सरल उपाय है कि—"व्यवसायात्मिका बुद्धि एका"। निश्चय वाली बुद्धि एक होती है–एक। लेना नहीं है, किन्तु देना है ससार से लेना नहीं है। ससार की सेवा करना है। क्यों करना है ? क्योंकि लिया है इस वास्ते देना है। तो, संसार का देना ही देना है, लेना नहीं है।

मेरे को संसार से लेना नहीं है। अपने लिए कुछ करना नहीं है। और मुझे कुछ चाहिए नहीं ससार से। क्यों नहीं चाहिए कि 'नाभावो विद्यतेसतः–(गीता २/१६) सत् का अभाव नहीं है। यह (स्वयं) सत् है। अनेक जन्मों से चला आ रहा है। संसार नाशवान है, असत है, इस वास्ते इसका अभाव नहीं है। और क्षण भंगुर है, इससे लेना कैसे बनेगा भाई ? इसकी मुझे आवश्यकता नहीं है। मेरा तो नित्य स्वरूप है। "है" मे कमी कभी आती नहीं। कमी आये बिना उसमें इच्छा कैसे हो ?, लेना कैसे हो ?, उसमें आवश्यकता कैसे हो। ऐसा हो ही नहीं सकता। इस वास्ते मेरे को कुछ नहीं चाहिए। और मुझे कुछ लेना नहीं है। और अपने लिए कुछ नहीं करना है।

चाहिए संसार को क्योंकि संसार भूखा है। और कमी है संसार में इसलिए करना है संसार के लिए। तो संसार के लिए ही करना है। आज से ही अपने लिए नहीं करना है। अब इसमे बात आई कि भोजन करना है कि नहीं ? भोजन भी अपने लिए नहीं करना है। यह भी शरीर के लिए करना है। हमारे लिए करने का मतलब है कि इसमे स्वाद देखेंगे, सुन्दरता

देखेंगे। स्वाद-सुन्दरता देखेंगे तो वह हमारे लिए होगा, रस लेंगे, सुख लेंगे तो हमारे लिए होगा। और यादि शरीर के लिए होगा तो भाई! इसको (शरीर की कमी पूर्ति कर दो, यह होगा तो, इसको जितनी आवश्यकता हो उतना इसको दे दिया जाय, भोजन दे दिया जाय, जल दे दिया ज य जिससे इसका काम चले और यह काम कर सके। जैसे घोड़ा रखते हैं तो उसको दाना, घास, पानी दे दो जिससे वह काम कर सके। ऐसे ही शरीर से काम ले सके इतना शरीर को देना है। कपड़ा पहिनना है तो कपड़ा देना है, शौकीनी नहीं करना है। भोजन करना है तो भोजन देना है, स्वाद लेना नहीं है। सुख लेगा तो वह अपने लिये हो जायेगा। और इसका निर्वाह कर देना पूरी तरह से, निगाह रखनी, पूरी तरह से। क्योंकि इससे काम लेना है; सबकी सेवा के लिये काम लेना है। खाना, पीना, सोना, कपडा इसको दे दिया, बस ये भी सेवा करना है इसलिए लेना नहीं है शरीर से। शरीर को भी देना है,। तो भाई भोजन अपने लिए नहीं करना है। शरीर से सेवा करने के लिए करना है। इन्द्रियों से भोग-भोगे जाते हैं, तो, भोग हमे नहीं भोगना है। तो इन्द्रियों को जरूरत क्या है? इन्द्रियों के बिना हमे ज्ञान नहीं होता। ज्ञान इन्द्रियों से होता है। ज्ञान इन्द्रियों से होता है, इस वास्ते इन्द्रियों को जरूरत है क्योंकि ज्ञान के बिना सेवा कैसे करेंगे? सब को सेवा की जाय, वह ज्ञान पूर्वक होगा तब न ठीक होगी; हमारे को जो अच्छा लगता है वह दूसरों को देना है। अपने को अच्छा लगे वह लोगों को देना है। जैसे महिमा अच्छी लगे तो औरों को देनी है। भाइयों ये साधन सरल है कि लोगों को देना है'। आपको जो प्रिय लगे उस वस्तु से दूसरों की सेवा करो। उस सेवा से क्या होता है? आपका जो राग है मिट जायेगा। जैसे किसी भाई का मिष्ठान खाने मे राग है। मीठा बहुत अच्छा लगता है। रह नहीं सकता है, मन चाहता है। देख ले तो मुँह मे पानी आवे। उसे मालूम पड जाय कि कल मीठा मिलेगा तो आज से ही चिन्तन होने लगे ऐसा जिसका राग है; उसे चाहिए की बढ़िया से बढ़िया मिठाई बना कर गरीब बालक जिन्हे रोटी भी तंगी से मिलती है, कपडा

भी तगी से मिलता है, उनको खूब प्रेम से खिलावें और उनके दर्शन करें। ऐसा करने से उसको खाने का राग मिट जायेगा। राग अपने खाने से नहीं मिटेगा अपितु औरों को देने से उनकी प्रसन्नता लेने से मिटेगा।

मैंने सुना है कि गांधीजी ने लिखा है कि मैंने ऐसे आदमी को देखे हैं जो खाते खाते पेट भर जाय पर मन मे खाने की है तो फिर कैसे खाव? तो वे क्या करते है कि खाया हुआ भोजन उल्टी करके निकाल कर फिर खाते हैं। यह खाने कि भूख है-जीभ को (पेट को नहीं) यह मिट नहीं सकती। वह काहे से मिटे? वह खाने से नहीं मिट सकती। वह दूसरों को देने से मिटती है। इस लिए औरों को दे। उनका सुख पहुँचावें। इससे अपने खाने की रुचि मिट जाती है। हमारी बूढ़ी बूढ़ी माताएं जो पुराने जमाने की थी, उनको आप याद करो। वे सबको भोजन कराने के बाद भोजन करती थीं। और बचा-खुचा ठण्डा-बासी, जैसा-तैसा खा लेती थीं। वृद्ध शरीर होने पर भी उन्हे सब पच जाता था। वे रोगी नहीं होती थी। क्योंकि वह बचा हुआ भोजन अमृत भोजन है। जबकि बचाया हुआ बढ़िया भोजन 'जहर' है, वह अमृत नही है। "यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषै। (गीता ३।१३) अतः औरों के लिए ही करना है। माताओं की बातें मैंने सुनी है। दिवाली आगयी, बड़े उत्सव का दिन है। माँ जो रसोई बनाती हैं। बडे-बडे बेटा कमाने वास्ते गए है तो उतना उत्साह नहीं और यदि बेटा-पोता सामने हो तो बडे उत्साह से भोजन बनाती है। इस प्रकार वह भोजन बनाकर प्रसन्न हो जाती हैं तो स्वय की खाने की रुचि उड़ जाती है। दूसरों को सुख देने से सुख लेने की रुचि मिटती है। सुख लेने की रुचि का नाम आसक्ति है। इसीका नाम कामना है। इसी से आदमी फसता है। पदार्थों से नहीं फंसता है। बल्कि यह मेरे को मिल जाय' सुख मेरे को मिले, इससे फसता है। तो, सुख देने से इस प्रकार त्याग होता है ऐसा निश्चय कर लिया कि सेवा ही करना है यह व्यवसायात्मिका बुद्धि है। सेवा करना है, लेना नहीं है पुराना कर्ज़ा लिया है वह कर्ज

हमें चुकाना है। लेना नहीं; देना ही देना है। ऐसा निश्चय होता है उसका नाम है "व्यवसायात्मिका बुद्धि"।

और "बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्"। जो व्यवसायी है उसकी बुद्धियाँ बहुत भेदों वाली अनन्त होती हैं। यह चीज चाहिए, वह चीज चाहिए, उसकी कभी तृप्ति नहीं होती क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत शाखा वाली है। एक-एक कामना पूर्ति के लिये न जाने कितने-कितने उपाय वह करेगा—झूठ-कपट किया जाय, ठगी की जाय, धोखा दिया जाय दूसरे प्रान्त में जाया जाय, व्यापार किया जाय नौकरी की जाय—ऐसे 'एक धन' के लिये कई उपाय करते हैं। एक एक इच्छा के लिये वह ऐसे कई उपाय किया करते हैं "बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्" वे बहुत कामना वाले होते हैं क्योंकि अव्यवसायी है। और व्यवसायी क्या? कि त्याग वृत्ति सबकी सेवा की वृत्ति—यह एक ही निश्चयात्मिका बुद्धि है तो सबकी सेवा करने का एक विचार पक्का कर लिया जाय। सबको सुख पहुँचाना हैं घर मे हो, चाहे बाहर हो, चाहे किसी को हो। जहाँ हो वहाँ ही सुख पहुँचाना है। सुख लेने की इच्छा नहीं रखनी है। बिना इच्छा के भी वे सेवा कर दें तो सेवा तो ले लो पर राजी मत हुआ। राजी हो जाओगे तो बंध जाओगे। जैसे आपकी स्त्री है, रसोई बना दी, तो प्रसाद पा लो पर राजी मत होओ कोई न बनावें तो स्वयं बनावें बड़े प्रेम से। आनन्द मनावें कि बहुत अच्छी बात है, आज सेवा का मौका दिया ऐसे ही दूसरे की सेवा के लिये एक बुद्धि करलें 'त्याग की'। इसको कर्मयोग कहते हैं। इसको त्याग कहते हैं। गीता ने केवल संसार छोड़कर चले जाने को त्याग नहीं कहा। इसके लिए तो अर्जुन तैयार था ही ऐसा त्याग करने को वह कहता था कि मुझे राज्य नहीं चाहिए। परन्तु जिसने त्याग करने को कहा, भगवान् ने उससे युद्ध करवाया और युद्धस्थल में इस त्याग की बात कही कि यह त्याग करो। तितिक्षा करो। त्याग कौन सा? भोगों का त्याग, आसक्तिका त्याग, कामना का त्याग। इसमें व्यवसायात्मिका बुद्धि की आवश्यकता है। सबसे पहले यह निश्चय करलें कि हमें तो सेवा करनी है।

लेना है ही नहीं किसी से। लेना हो पडे तो उनकी प्रसन्नता के लिये ले लें। उनकी प्रसन्नता के लिये ले लो। परन्तु सेवा लेने मे राजी न होओ। यह सेवा है। इसका नाम व्यवसायात्मिका बुद्धि है। अब इसमे कोई शंका हो तो बोलो।

निश्चय पक्का, बिल्कुल दृढ़, एकदम। आजतक संसार से बहुत लिया। और लेने की इच्छा भी रखी लेकिन अभी तक तो तृप्ति नहीं हुई। आप अपने जीवन पर विचार कर देखो—मां बाप से सेवा ली उससे तृप्ति नहीं हुई। बूढे पिताजी काम करते ही रहे यह इच्छा रहती है। माजी सेवा करती ही रहे; घर की रखवाली करती रहे। यह इच्छा रहती है। उनके पास धन सम्पत्ति हो सो हमे दे दें—ऐसी इच्छा रहती है। पडोसियों से लिया, मित्रों से लिया उससे भी तृप्ति नहीं हुई। वैश्यों से लिया, तृप्ति नहीं हुई। समाज मे गये, सेवाएँ की क्या, सेवाओं का लेना ही लेना रहा। सेवा करने का तो नाम था। फिर भी उससे तृप्ति नहीं हुई। तो लेने से तृप्ति अभी तक किसी की नहीं हुई। जिसकी हुई है देने से हुई है। इस वास्ते देने हो देने का विचार कर लें। इसका नाम व्यवसायात्मिका बुद्धि है। "बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्"। तृप्ति किसी को नहीं होती है, जो ऐश्वर्य इकट्ठा करना चाहता है, जो सुख भोगना चाहता है।

"भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते" ।। गीता २/४४ ।।

इस वास्ते आज से ही पक्का निश्चय करलो कि सेवा ही करनी है। सुख लेना ही नहीं है।

नारायण नारायण नारायण



(१७) भगवान् का ही काम करें

जैसे कोई मनुष्य का स्वभाव होता है, वह व्यक्ति उससे (स्वभाव से) अलग नहीं होना। स्वभाव साथ हो रहता है। 'अपना' और 'स्वभाव' दो अलग कहे जाते हैं, पर ऐसा नहीं है कि स्वभाव को अलग रख दें। स्वभाव पृथक है। और वह स्वय पृथक है ऐसा नहीं है। वह स्वभाव से पृथक नहीं है ऐसे हो यह प्रकृति है, भगवान् की। ऐसे हो "स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते" (गीता ८/३) स्वभाव अलग नहीं है तो अपने को स्वभाव से अलग न मानो। 'हम तो परमात्मा के हैं' यह सच्ची बात है, मूल मे तो यह बात है। अलग कब से हो गया? जब से कुछ चीजों को अपनी मान लिया। "मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति" (गीता १५/७)। प्रकृति स्थित इन्द्रियों को अपनी मानकर यह ईश्वर बन गया "उत्क्रामतीश्वर" (गीता १५/८)। तो प्रकृति की परन्तु अपनी मान लिया। 'संयाति का तात्पर्य है मानो भगवान् ऐसा कहते हैं कि यह आप मालिक बन तो जाता है पर मालिक तो है नहीं। कुछ चीजों को अपनी मान लेने से, अपना असली मालिक भगवान् को भूल गया। और वे चीजें अपनी रहेगी नहीं, रहती नहीं। ये तो बदलती ही चली जा रही हैं। संसार जितना है वह सबका सब प्रलय की तरफ बड़ी तेजी से जा रहा है। जितना दर्शन है वह अदर्शन मे जा रहा है, अप्रकट होता जा रहा है। दर्शन सब अदर्शन को जा रहा है। इसको भले ही अपना मानें पर यह तो खत्म हो जायेगा। इनको अपना न मानकर 'हम भगवान् के हैं,' ऐसा मानें तो निहाल हो जायें। गीता अन्त मे कहती है—"मामेकं शरणम् व्रज" (गीता १८/६६)। "हरि शरणम्! हरिः शरणम्!!" फिर हमारे लिये कोई पंचायत नहीं है। हम भगवान् के शरण हैं। भगवान् की आज्ञानुसार कार्य करते हैं। खेल रहे हैं। जब तक यहाँ हैं यहाँ खेल रहे हैं। जब वहाँ बुलायेंगे तो वहाँ चले जायेंगे। "जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये। सीताराम सीताराम सीताराम कहिये"। बड़ी मौज है, आनन्द

ही आनन्द है। जहाँ अपनी मानी और आफत आई। जो अपनी मानते नहीं, उनको आफत नहीं आती। अपनी मानी तो जिम्मेवारी आ गयी। जिम्मेवारी भले ही रखो पर काम करे भगवान् का ही। भगवान् का समझ कर काम करें, जैसे मुनीम काम करता है। मालिक के नाम से दस्तखत भी करता है, सब कुछ करता है पर नफा नुकसान मालिक का, अपने तो मौज है। ऐसे सब कुछ भगवान् का है, अपने तो हरदम मस्त रहे। अपनी मानकर मुफ्त मे दुःख ले लिया, आफत ले ली। ऐसे उड़ते तीर को ले लें। तो कोई क्या करे? तीर उड़ता है और सामने खड़े हो गये तो तीर तो सामने लगेगा ही। तो दुःख होगा ही। ऐसे ही संसारी होता है, वह बीच मे आकर कहता है कि 'मैं मालिक हूँ'। क्यों आफत करता है? न पहले तेरा था, न पीछे तेरा रहेगा और न अभी तेरा है। अभी तेरा हो तो रखले इनको मन मुताबिक पर तू शरीर का रख नहीं सकता, कुटुम्ब को रख नहीं सकता, धन को रख नहीं सकता। हम मर्जी के मुताबिक कर लें, यह बात हाथ की है नहीं। इसलिए उसीका काम करते हैं। अतः उसी पर एहसान कर। जैसे बच्चा दूध भी पीता है तो माँ पर एहसान करता है। माँ ज्यादा गरज करती है तो कहता है कि तेरे कहने से दूध पी लिया। मानो यह माँ को निहाल करता है। ऐसे ही भगवान् का काम करे। भगवान् पर एहसान करके भगवान् का काम करें। मेरा कुछ नहीं, तेरा ही घर है, तेरा ही परिवार है, तेरी ही गृहस्थी है। भगवान् कहते हैं-हाँ भाई मेरा ही है। इन सबके मालिक भगवान् हैं तो भगवान का ही कार्य कर रहा है। तेरा ही काम करते हैं। हम तुम्हारे ही हैं। तुम्हारा ही कार्य करते हैं। कैसा मौज की बात है? अपने कुछ करना है ही नहीं अपने लिये कुछ चाहिए ही नहीं। चाहिए तो भगवान् हैं, हमे क्या चाहिए, क्या नहीं चाहिए' छोटा बालक इसकी चिन्ता करता ही नहीं, ऐसे ही हम भी निश्चिंत रहें; और भगवान् के भरोसे उनकी आज्ञा का पालन करें। ऐसा हम क्यों करें? कानून है, उसके अनुसार कार्य करें 'माम् एकम् शरणम् व्रज अहत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"। (गीता १८।६६) मेरी शरण हो जा, फिर तू चिन्ता मत कर' कैसी बढ़िया बात है? हम चिन्ता

(१८) "सर्वभूतहितैरताः

साधक के लिए व्यक्तिगत सुख भोगना महान् बाधक है। वह तो परमात्मतत्व को प्राप्त करना चाहता है। जो व्यक्तिगत संपत्ति मानता है और व्यक्ति बन करके अपने सुख भोगना चाहता है, आज इसी कारण से उसको आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती है। ज्ञानमार्ग की दृष्टि से भी भगवान् कहते हैं—"ते प्राप्नुवन्तिम मेव सर्वभूत हिते रता" (गीता १२/४) प्राणिमात्र के हित मे रत रहने वाले मेरे को प्राप्त होते हैं। तो जो साधन करता है वह हित करने में भी अपना व्यक्तिगत न माने। हित करने मे जो विचार है कि इससे मेरा कल्याण हो जायेगा, यह अपना हित है। और मेरे को ससार का सुख 'मिले' यह तो हित है ही नहीं, यह तो सुख भोग मे फँसना है, पशुपना है। मेरे को सम्पत्ति मिल, मैं सुखी हो जाऊँ, यह प्रवृत्ति पशुओं में देख लो, पक्षियों मे देख लो, वृक्षों मे देख लो, सब जगह ही हैं। तो साधना मे चलता है, वह अपना, उद्धार, कल्याण, हित चाहता है। साधक मुक्ति, भक्ति प्रेम प्राप्ति, भगवद्दर्शन मांगता है और अपना हित चाहता है। अपना हित चाहता है यह भी सुन्दर है। परन्तु भगवान् यह बात भी स्वीकार नहीं करते। 'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः'। साधक के प्राणी मात्र को कल्याण का भाव होना चाहिए। चाहे पशु-पक्षी हो या मनुष्य हो; चाहे कोई क्यों न हो; ('सर्वभूतहिते रताः') प्राणी मात्र के हित मे उसकी रति-प्रीति होनी चाहिए। "हित वह किसका कर सकेगा किसका नहीं कर सकेगा" यह प्रश्न नहीं है। उसकी रति-प्रीति प्राणीमात्र के हित मे होनी चाहिए, उसकी भावना सबके कल्याण की भावना होनी चाहिए।

"सर्व भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

—सर्व भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाक्भवेत्। " सबके सब सुखी हो जाय, सबके सब निरोग हो जायं और सबका कल्याण ही कल्याण, मंगल ही मगल हो जाय,। किसी का कभी किंचित मात्र भी

अनर्थ न हो। ऐसा भाव जबतक नहीं होता तब तक ज्ञानमार्ग मे भी ऊंचा नहीं हो सकता है, तो कर्म मार्ग से हो कैसे सकता है ? कर्म मार्ग में तो किसी के अहित की किंचित मात्र भावना भी रहेगी तो कर्त्तव्य का ज्ञान पूरा नहीं होगा। उसको किसी के भी अहित की भावना ही नहीं, सबके हित की भावना करनी पडेगी। कर्म मार्गी अपना सुख नहीं चाहता, वह तो अपना सुख भी दूसरों को देता है। औरों के लिए सुख चाहिए, हमारे लिये नहीं। हित मे, सबके साथ हमारा हित हो। व्यक्तिगत हमारा कल्याण हो और दूसरे का कल्याण न हो, यह बात नहीं ठहरेगी। जिसमे केवल व्यक्तिगत हित होगा वह कर्मयोग नहीं होगा। सब के हित से अपना हित न समझना अथवा अपना हित अलग समझना— यह कर्म योग नहीं। "कर्मयोग" है सबके हित मे ही हमारा हित है। उनके कल्याण मे ही हमारा कल्याण है। सबसे अलग, अपना व्यक्तिगत अपना सुख-संग्रह नहीं चाहता। अपना व्यक्तिगत सुख संग्रह चाहता है तो परमात्मा की प्राप्ति की वृत्ति भी नहीं बना सकती, मानो "अपना कल्याण करना है" यह निश्चय भी वह नहीं बन सकता। इसका अर्थ है, "भोगैश्वर्यप्रसक्तानां" ।(गीता२/४४) भोग भोगने मे और ऐश्वर्य संग्रह करनेमे आसक्त है। "व्यवसायात्मिका बुद्धि समाधौ न विधीयते"। (गीता २/४४) ऐसी बुद्धि परमात्मा की प्राप्ति करना है ऐसा निश्चय भी नहीं कर सकती है तो यह व्यक्तिगत सुख चाहना महान् बाधा है। सब सुखी रहे, सबको सुख मिले सबको आराम मिले, सबको बडाई हो, सबको ही आदर मिले। सब ही सुखी हो जायें। यह व्यापक भावना हुए बिना व्यापक जो परमात्मतत्त्व है उसके साथ एकता नहीं हो सकती। सम्पूर्ण जगह परिपूर्ण होते हुए भी आज उसके साथ एकता का अनुभव क्यों नहीं हो रही है ? इस में कारण अपना व्यक्तिगत सुख चाहना ही है। उस सुख को चाहना उस सुख का भोग, उस सुख-सामग्री का संग्रह ये इसमे बाधक हैं। इस वास्ते पहले से ही अपनी इस तुच्छ भावना को हटा दें। हित की भावना को व्यापक बना दें सबका कल्याण हो, सबका हित हो—सबके

क्यों करें ? "चिन्ता दीन दयाल को मो मन सदा आनन्द" चिन्ता किसको ? चिन्ता तो मालिक को है। "जायो है सो पालसो राम दास गोविन्द"। बिल्कुल चिन्ता मत करो। जो सामने काम आवे वह उत्साह से, अच्छी तरह से, निरालस्य होकर, प्रमाद आकर्षण बिल्कुल न रखकर, तत्परता से कार्य करो। हरदम उसी का नाम ले रहे हैं। उसी की बात कर रहे हैं। उसी की बात सुन रहे हैं। उसी की लीला पढ रहे हैं। उसी का चिन्तन कर रहे हैं। हमारा कार्य है ही नहीं। संसार का कार्य उसी का काम, खेत का काम उसी का काम, दुकान का काम उसी का काम, घर का काम भी उसी का काम है। हम तो बीच में आ गये बस। जब कह देंगे तभी चल देंगे। काम पहले भी चल रहा था, अब भी चल रहा है, और आगे भी चलता रहेगा। यह उपाय कितना सुगम, कितना बढ़िया है ? अपने कोई चिन्ता नहीं। इन्हे अपना मान कर दुख पाना है। दुःख पाने के लिए अपनी है, बस, और कुछ मतलब नहीं। 'और मिल जाय' यह भी दुख पाने के लिए, 'इच्छा' दुख पाने के लिए, 'ममत्व' दुख पाने के लिए है। सिवाय दुख के और कुछ मिल नहीं सकता। और अपनी रहेगी नहीं। क्योंकि अपना है ही नहीं। 'अपनी मानना' इसका नाम बन्धन है। 'अपनी नहीं माना' इसका नाम मोक्ष है। मुक्ति क्या है ? कि ईमानदार, बस, मुक्त हो गयी। जो जो चीजें आपकी अपनी नहीं तो उनसे आपकी मुक्ति हो गयी। कन्या की बडी चिन्ता है, कन्या ब्याह दी गया। तो बस, चिन्ता मिट गयी। चिन्ता क्यों मिट गई, आप तो वही हैं ? हमारी मानने मे चिन्ता थी। हमारापन चला गया, तो चिन्ता चली गयी। हमारी क्यों मान ? सब भगवान् देते हैं इसलिए सब भगवान् का है। ऊंट पर बैठा है, भार है, गठरी सिर पर ले ली। सामने आदमी आ रहे थे, कहने लगे, गठरी सिर पर क्यों उठाई है ? ऊंट पर भार ज्यादे है। ऊँट पर बोझा ज्यादे हो गया, इस वास्ते सिर पर रख लिया। तू कहाँ है ? ऊँट पर। तो ऊँट पर क्या फर्क पड़ा ? मैंने उठा लिया इतना फर्क पड़ा कि नहीं, इससे पहले ऊँट पर था, अब मैंने इसे उठा ली।

मेरे ऊपर भार आ गया इतना ऊँट पर वजन कम हो गया। मैंने उठा लिया इतना फर्क तो पड़ ही गया। तो उन्होंने कहा ऊँट तो तेरे नीचे है और तेरे ऊपर गठरी है, तू बीच मे पिसा जा रहा है, मुफ्त मे। इसके सिवाय कोई फर्क पड़ा है क्या ? इसी प्रकार हम करते है। और बीच मे मसले जाते हैं; ऊँट वाले की तरह ही। कर तो कुछ सकते नहीं। केवल पिसे जाओगे। इतना आपका उद्योग है। सिर पर पगड़ी हो या टोपी हो तो उसका सिर पर भी वजन है। अपने खुले सिर रहे, मजे से हवा लगती रहे। तो कितनी मौज? हृदय से कहे, आप के घर द्वार के बाल बच्चे, आपका ही सब कुछ, और आपके ही हैं हम प्रभु। खूब उत्साह से काम करें। खेले मजे मे मौज से गलती भी न हो जाय, भूल भी न हो जाय, ऐसी सावधानी रखें, ठाकुरजी का काम है। चीज नष्ट भी कैसे हो, हमारी थोडे ही है, ठाकुरजी की है, ऐसे करके खेलें अपने तो। "हरिः शरणम्, हरिः शरणम्, हरिः शरणम्, हरिः शरणम्। सच्ची बात है यूं ही। अपना कुछ कर सकते है क्या ? केवल चिन्ता करते हैं। आज रहस्य खुल गया। अब इसमे कोई शका हो, तो बोलो। सार यही है कि अपना नहीं माना और चिन्ता गयी। अपना माना और आफत आयी।

प्रश्न :—हमारे तो यह बात बैठती नहीं है।

उत्तर :—बिल्कुल सीधी है, बैठी हुई है। आप बैठाना चाहते नहीं। दुख पाने का क्या शोक लगा है, भगवान् जाने ? कौन मना करे अपना नहीं है—मानने मे। और अपनी नहीं मानने मे क्या जोर आता है ? पहले नहीं थी, पीछे नहीं रहेगी, बीच मे क्यों आफत मोल लो ? आज से १०० वर्ष पहले यह चीज आपकी थी क्या ? १०० वर्ष, यह रह जायेगी, बाद मे ? बीच मे दुख पाने के सिवाय ओर क्या किया ? काम करो, सेवा करो। अपनी क्यों मानते हो। ठाकुरजी की मानो। ठाकुरजी की मानकर ठाकुरजी पर एहसान कर सकते हैं। आपका काम करते हैं। हां भया ! मेरा करते हो। अतः आज से मानो कि हमारी तो है ही नहीं। आज से ही मानो अभी, अभी, अभी से। भगवान् को कह दे, अभी से।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

नारायण नारायण नारायण

(१८) ''सर्वभूतहितैरताः

साधक के लिए व्यक्तिगत सुख भोगना महान् बाधक है। वह तो परमात्मतत्व को प्राप्त करना चाहता है। जो व्यक्तिगत संपत्ति मानता है और व्यक्ति बन करके अपने सुख भोगना चाहता है, आज इसी कारण से उसकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती है। ज्ञानमार्ग की दृष्टि से भी भगवान् कहते हैं—''ते प्राप्नुवन्तिम मेव सर्वभूत हिते रताः''(गीता १२/४) प्राणिमात्र के हित मे रत रहने वाले मेरे को प्राप्त होते हैं। तो जो साधन करता है वह हित करने में भी अपना व्यक्तिगत न माने। हित करने मे जो विचार है कि इससे मेरा कल्याण हो जायेगा, यह अपना हित है। और मेरे को ससार का सुख 'मिले' यह तो हित है ही नहीं, यह तो सुख भोग मे फँसना है, पशुपना है। मेरे को सम्पत्ति मिल, मैं सुखो हो जाऊँ, यह प्रवृत्ति पशुओं मे देख लो, पक्षियों मे देख लो, वृक्षों मे देख लो, सब जगह ही हैं। तो साधना मे चलता है, वह अपना, उद्धार, कल्याण, हित चाहता है। साधक मुक्ति, भक्ति प्रेम प्राप्ति, भगवद्दर्शन मांगता है और अपना हित चाहता है। अपना हित चाहता है यह भी सुन्दर है। परन्तु भगवान् यह बात भी स्वीकार नहीं करते। 'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः'। साधक के प्राणी मात्र को कल्याण का भाव होना चाहिए। चाहे पशु-पक्षी हो या मनुष्य हो; चाहे कोई योनि हो, ('सर्वभूतहिते रताः') प्राणी मात्र के हित मे उसकी रति-प्रीति होनी चाहिए। ''हित वह किसका कर सकेगा किसका नहीं कर सकेगा'' यह प्रश्न नहीं है। उसकी रति-प्रीति प्राणीमात्र के हित मे होनी चाहिए, उसकी भावना सबके कल्याण की भावना होनी चाहिए।

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया :।

—सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःखभाक्भवेत्। '' सबके सब सुखी हो जाय, सबके सब निरोग हो जायं और सबका कल्याण ही कल्याण, मंगल ही मगल हो जाय,। किसी का कभी किंचित मात्र भी

अनर्थ न हो। ऐसा भाव जबतक नहीं होता तब तक ज्ञानमार्ग में भी ऊंचा नहीं हो सकता है, तो कर्म मार्ग से हो कैसे सकता है ? कर्म मार्ग व तो किसी के अहित की किंचित मात्र भावना भी रहेगी तो कर्त्तव्य का ज्ञान पूरा नहीं होगा। उसको किसी के भी अहित की भावना हो नहीं, सबके हित की भावना करनी पड़ेगी। कर्म मार्गी अपना सुख नहीं चाहता, वह तो अपना सुख भी दूसरों को देता है। औरों के लिए सुख चाहिए, हमारे लिये नहीं। हित मे, सबके साथ हमारा हित हो। व्यक्तिगत हमारा कल्याण हो और दूसरे का कल्याण न हो, यह बात नहीं ठहरेगी। जिसमे केवल व्यक्तिगत हित होगा वह कर्मयोग नहीं होगा। सब के हित से अपना हित न समझना अथवा अपना हित अलग समझना— यह कर्म योग नहीं। "कर्मयोग" है सबके हित मे ही हमारा हित है। उनके कल्याण मे ही हमारा कल्याण है। सबसे अलग, अपना व्यक्तिगत अपना सुख-संग्रह नहीं चाहता। अपना व्यक्तिगत सुख संग्रह चाहता है तो परमात्मा की प्राप्ति की वृत्ति भी नहीं बना सकती, मानो "अपना कल्याण करना है" यह निश्चय भी वह नहीं बन सकता। इसका अर्थ है, "भोगैश्वर्यप्रसक्तानां" ।(गीता२/४४) भोग भोगने मे और ऐश्वर्य संग्रह करनेमे आसक्त है। "व्यवसायात्मिका बुद्धि समाधौ न विधीयते"। (गीता २/४४) ऐसी बुद्धि परमात्मा की प्राप्ति करना है ऐसा निश्चय भी नहीं कर सकती है तो यह व्यक्तिगत सुख चाहना महान् बाधा है। सब सुखी रहे, सबको सुख मिले सबको आराम मिले, सबको बड़ाई हो, सबको ही आदर मिले। सब ही सुखी हो जायें। यह व्यापक भावना हुए बिना व्यापक जो परमात्मतत्व है उसके साथ एकता नहीं हो सकती। सम्पूर्ण जगह परिपूर्ण होते हुए भी आज उसके साथ एकता का अनुभव क्यों नहीं हो रही है ? इस में कारण अपना व्यक्तिगत सुख चाहना ही है। उस सुख को चाहना उस सुख का भोग, उस सुख-सामग्री का संग्रह ये इसमे बाधक हैं। इस वास्ते पहले से ही अपनी इस तुच्छ भावना को हटा दें। हित की भावना को व्यापक बना दें सबका कल्याण हो, सबका हित हो—सबके

सब सुख पावें। साधक का "सर्वभूत हिते रताः" का भाव होना चाहिए : प्राणीमात्र के हित मे रति-भक्ति के साथ इसकी भावना मिल जायेगी तो "यतःप्रवृत्ति भूतानाम् येन सर्वमिदमृततम् (जिससे ससार पैदा हुआ है। जिससे ससार व्याप्त है।) स्व कर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः ॥ (गीता १८/४६) अपने कर्मों द्वारा उस परमात्मा का पूजन करना है। जो सबमे परिपूर्ण है, उस परमात्मा का पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है। सबमे जो परमात्मा है उसका पूजन करना है। ऐसा भगवान् ने भी कहा हैं "मया ततमिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना" (गीता ९.४) मैं सब जगह व्याप्त हूं। सब व्याप्त मेरे द्वारा हैं। ज्ञान योग का जहाँ प्रकरण चला दूसरे अध्याय मे, वहां भगवान् सबसे पहले परिचय क्या देते हैं ? सत् और असत् दोनों का निर्णय करते हैं और अविनाशी का वर्णन करते हुए सबसे पहले उसका निर्णय देते हैं "अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्व मिदम् ततम्" (गीता २।१७) जिसके द्वारा यह ससार व्याप्त है वह अविनाशी है, इसका कोई विनाश नहीं कर सकता उसके साथ अपनी एकता होनी चाहिए यानी सबके साथ अपनी एकता होनी चाहिए। "नित्य सर्वगतः स्थाणुः रचलाऽयंसनातनः" (गीता २/२४)। वह अचल और सर्वगत है। और बारहवें अध्याय मे जहाँ ज्ञान का विषय चला वहां "अनिदेश्यम् अव्यक्तं, अचिन्त्यम् कूटस्थ सर्वत्रगम्, अचलम् ध्रुवम्.।" आदि पदों से बताया कि परमात्मा सभी जगह व्याप्त हैं। तो साधक सर्वत्रगम् परमात्मा की प्राप्ति चाहता है। और जो एक व्यक्ति का सुख और एक व्यक्ति का ही हित चाहता है। 'सर्वत्रगम्' यानी जो सब जगह व्याप्त है उसे उसकी कैसे प्राप्ति हो सकती है ? इस वास्ते उसकी प्राप्ति के लिए अपना व्यक्तिगत हित सुख भी नहीं रखना चाहिए। सुख भी नहीं लेना चाहिए क्योंकि सुख सांसारिक होता है। वह तो स्वयं कल्याणमय है। सबके कल्याण मे ही अपना कल्याण है। सबके सुख मे ही हमारा सुख है। वह अपना अकेला सुख नहीं चाहता। जब तक अकेला सुख भोगना चाहता है तब तक वह साधक नहीं है। साधन करता है अच्छी बात है पर साधना में जैसी प्रगति होनी चाहिए वैसी होगी नहीं। प्रगति तेजी से तभी होगी जब विचार होगा कि सबके

सुख में अपना सुख है; सबके ही कल्याण मे अपना कल्याण है। व्यक्तिगत कल्याण कल्याण नही है। होता है व्यक्तिगत कल्याण यह अलग बात है। पर मेरा कल्याण हो जाय, दूसरों का कल्याण न होवे, यह तो सांसारिक आदमियों की बात है। वह तो नीचे से नीचा प्राणी है, कुत्ता है, गदहा है, सब सुखी हों, कुछ भी हो जाय भले ही यह खास बात है। खूब ख्याल करने की है; मनन करने की है। उदारता की है। तो सबको सुख पहुँचाना है। सबका हित हो उसी में अपना हित है। नीति में लिखा है "यस्मिन् जीवति जीवन्ति, बहवः सूत्र जीवति।.....यस्मिन् जीवहि जीवनः"— जिसके जीने से दूसरे जीते हैं वह तो जीता रहे, यह तो ठीक है। "वयासि किं न कुर्वनि स्वस्य उदर पूरण"। पक्षी अपने चूंच से अपनी उदरपूर्ति नहीं करते हैं क्या? वे भी अपनी चूंच से अपनी उदरपूर्ति कर लेते हैं, तो केवल अपनी उदरपूर्ति करता है उसमें और पशु में क्या अन्तर है? पक्षी में और उसमें क्या अन्तर है? क्या मनुष्यता है यह? "यस्मिन् जीवतिजीवन्तु बहवः"। "सर्वभूत हिते रता" यह भाव साधक का होना चाहिए। इस वास्ते निर्वैरा सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव" जहाँ भक्ति के लक्षण बताते हैं वहाँ "मत्कर्म, कृणमत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः...निर्वैरः अनन्य सर्वभूतेषु" यः स मामेति पाण्डव॥ "सर्व भूतेषु निर्वैरः"। (गीता ११/५५) बताते हैं। उसका किसी भी प्राणी के साथ किंचत्मात्र भी वेर नहीं चाहिए। अगर किसी एक के साथ वेर रह गया तो वह परमात्मा के साथ वेर है क्योंकि परमात्मा सब में परिपूर्ण है। एक जगह वेर हुआ तो भगवान् के एक अंग के साथ वेर हो गया न। सब शरीर की पूजा करे और थोड़ी सी अंगुली काटे तो उसकी पूजा होगी क्या? और सब शरीर की तो पूजा करे और थोड़ी सी अगुली काट लें तो क्या वह राजी होगा? अंगुली काटता ही क्यों है? पूजा न करे तो रहने दे, न सही। ऐसे एक प्राणी के साथ वेर रखता है तो परमात्मा जो सब जगह परिपूर्ण है वे कैसे प्रसन्न हो जायगे? क्या एक प्राणी उसका अंग नहीं है? भगवान् का प्यारा अग है वह भी। इस वास्ते किसी के साथ वेर है तो भगवान् के साथ

वैर है। "यो मांपश्यति सर्वत्र", सर्वभूतस्थित यो मां भजत्येकेत्वमास्थितः"। (गीता ६/३०-३६) जो सर्वत्र परमात्मा को देखता है, जो सम्पूर्ण प्राणियों में एक मेरा भजन करता है वह हो मुझे ठीक भजता है। तो प्रत्येक साधक मात्र को सोचना चाहिए कि सबमें हमारे प्रभु हैं, सबको कैसे सुख मिले, सबको कैसे आराम मिले। चाहे हमे दुख ही देना हो, कष्ट ही देता हो, हमारी बुराई ही करता हो, द्वेष ही हमारे साथ रखता हो, सब तरह से हमारे को दुःख ही पहुँचाता हो पर उसका भो हृदय से हित चाहना चाहिए क्योंकि जो हमें दुःख पहुँचाता है वह तो हमारे पापों का नाश करता है। आप पाप मे जा करके भी हमारा हित करता है। कितना हितैषी है देखिये ? "हमारा अहित करता है" जान करके तो वह अपना अहित कर लेता है; मेरे हित के लिये। क्योकि जब वह मेरे को दुःख देना है तो उनसे मेरे पापों का नाश होता है कि नहीं ? दुःख है जितना पापों का नाश है। दुःख से पापों का नाश होता है। वह तो हमारे पापों का नाश करने के लिए, खुद पापों का भागी होकर भी चेष्टा करता है तो उसको तो विशेषता से सेवा करनी चाहिए। और औरों की तो सेवा करनी ही चाहिए।

सब जगह हमारे प्रभु परिपूर्ण हैं। सभी परमात्मा है। "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व भूतहितेरताः"। (गीता १२/४) प्राणीमात्र के हित में प्रीति-रति होनी चाहिए। "सबका हित कैसे हो ? सबका कल्याण कैसे हो ? क्या करूं, सबका हित कैसे हो ? "ऐसा उसका भाव होना चाहिए। ऐसे भाव वाला ही परमात्मतत्व को प्राप्त कर सकता है। पक्षपात करने वाला नहीं। अपनी ही उदरपूर्ति करता है, अपना ही सुख पाता है, अपने लिए ही धन कमाता है, अपनी ही बड़ाई चाहता है, मेरा ही आदर हो जाय, मेरी ही बड़ाई हो जाय तो वह परमात्मतत्व को कैसे प्राप्त होगा ? ऐसी बात है। इस वास्ते सबके सुख मे, सबके हित में, अपना हित है। इसके बिना ज्ञानयोग भी नहीं चल सकता तो कर्मयोग और भक्तियोग तो चलेगा ही कैसे।

"सो अनन्य जाकें असि मति न टरई हनुमन्त"।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवन्त"।

वह सबमें भगवान् देखता है। भगवान् की सेवा वह सब जगह करता है। अब किसीका अहित कैसे करे? **"अब हों कासों वैर करों"**। किससे वैर करूं? भगवान कहते हैं **"घट-घट हों बिहरों"**। घट-घट मे मैं हूं। ऐसे भगवान् हमारे सब मे हैं। इस बात का ख्याल करना चाहिए कि वे सब जगह हैं। सब जगह अपनी आत्मा है। सभी के अन्दर वह तत्व है इस वास्ते सबकी सेवा करदे।

नारायण नारायण नारायण



(१६) दासता का त्याग करें

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" (२।१६)। असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है। सत् है उसका विनाश नहीं होता है। इस बात का तत्वदर्शियों ने दर्शन किया है। अब आप और हम विचार करें तो यह बात बिलकुल समझ मे आ जाती है कि एक दिन वह था, जब हम इस रूप से इस संसार मे नहीं थे। और एक दिन ऐसा होगा कि हम जिस रूप से वैठे हैं उस रूप से हम नहीं रहेगे। क्या ऐसा है कि हमारे ऐसे नहीं होने से संसार मे कोई ऐसी बाधा आगयी हो या बड़ा भारी अभाव था जिसे हमने आकर उसकी पूर्ति कर दी हो ? बहुत ही अभाव खटकता था लोगों को, ऐसी बात भी नहीं थी, और इस रूप से चले जायेंगे तो थोड़ा बहुत किसी के फर्क पड़ जाय भले ही, पर कुछ दिनों के बाद कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारे बिना यह संसार रह सकता है, रहता था और रहेगा। अब भी हम जिस जगह रहते हैं, थोड़ा सा ही जगत् है। संसार अब भी है और रहेगा ही। हमारे बिना रह सकता है, तो फिर हम कायरता क्यों लावें ? इसके बिना हम भी रह सकते हैं। हमारे को ऐसा स्वभाव बना लेना चाहिए कि इसके बिना हम खूब मौज से, प्रसन्नता से रह सकें। यह ससार जो आगे नहीं था, अब है और आगे नहीं रहेगा, उसका हमारे बिना (सब संसार का) काम चलता है, चल रहा है और आगे भी चलेगा। तो हमारा भी संसार और शरीर के विना काम चल सकता है। अगर हम ऐसा विचार करलें तो ससार में और हम मे बराबरी हो जायेगी। नहीं तो हम हारे रहेंगे कि ससार के विना हमारा काम नहीं चलता। तो हार किसी को भी अच्छी नहीं लगती। और यह हार स्पष्ट है कि हमारा, परिवार के बिना क्या होगा ? रुपयों के बिना क्या होगा ? कोई चीज यानी मकान के बिना क्या होगा ? तो हम हार जाते हैं। हार जाते हैं तो हमारी वेइज्जती हो जाती है। कम से कम, कम से कम, कम से कम यह विचार कर लेना है कि हमारे बिना

संसार रह सकता है तो हम भी संसार के बिना रह जायेंगे। एक संत की वाणी मे हमने पढ़ा है कि ऐसा विचार आते ही हमारा बड़ा उत्साह पैदा हो गया। भाव पैदा हो गया कि हम ऐसा अकार्य क्यों होने दें? जब यह संसार हमारे बिना रह सकता है तो हम भी इसके बिना रह सकते हैं। हम रह ही क्या सकते हैं, हम तो पहले से थे ही। इस रूप मे न रहे हो भले ही पर सदा से हम हैं। और इस रूप में भी बहुत सी चीजों के बिना हम रहते हैं। बहुत सी चीजों को तो हम संकोच में चाहते हैं। सब चीजों के बिना हम रह सकते हैं। तो हम ऐसी कायरता नहीं लावें कि इनके बिना हमारा काम नहीं चलेगा अबसे ऐसी कायरता लाना ही गलती होगी। और हम बन्धन में बँध जायेंगे। बधन मे कौन होते हैं जो कहते हैं इनके बिना हमारा काम नहीं चलेगा। ऐसा जिसके भाव नहीं होता कभी भी, वे मुक्त पुरुष होते हैं बड़े कौन होते हैं जिनका "बिना होने से" काम चल सकता है। 'इनके बिना हमारा काम नहीं चलेगा'—ऐसा भाव ही बन्धन है। इस बंधन से हमारी मुक्ति हो सकती है। हमारी इनको गरज नहीं। इनका हमारे बिना भी काम चलता है तो इनकी गरज कर के हम क्यों गुलाम होवें? इनके बिना हंस भी सकते हैं, बोल भी सकते हैं। अतः ऐसा स्वभाव ही बना लेना कि इनके बिना हमारा काम चलता है। एक-एक चीज के बिना, एक-एक व्यक्ति के बिना लोग कहते हैं कि हमारा काम नहीं चलता। पर यह सभी का अनुभव है कि उसके बिना काम चलता है। खास आदमी होता है घर में, उसके मरने के बाद भी काम चलता है। कुछ दिनों बाद तो, और कुछ वर्षों के बाद तो उसे भूल ही जाते हैं। वह तो एक-एक व्यक्ति की गुलामी पकड़कर कहता था कि इनके बिना हमारा काम नहीं चलेगा, पर मरने के बाद लोग उसे भूल ही जाते हैं। सेवा करो, रहो प्रेम से साथ मे, पर भीतर से जो हार है, उसे स्वीकार न करो। गरज भोक रेंगे और कायरता भी मानेंगे तो रोना पडेगा। होगा तो वही जो होने वाला है, ससार तो हमारे साथ रहेगा नहीं। हम संसार के साथ रह सकेंगे नहीं। अवश्य ही वियोग तो होगा ही और मुफ्त मे रोना पड़ेगा साथ मे।

नहीं तो बिलकुल निश्चित निर्भय हो जायँ। जितने दिन रहें मौज से रहे।

और इनके बिना हम रहते हैं। जैसे सुषुप्ति के बिना आप अभी हैं। और इस जागृत के बिना हम सुषुप्ति मे है। स्वप्न के बिना सुषुप्ति और जागृत में हैं। सुषुप्ति के बिना, स्वप्न के बिना, भी हम हैं। इन अवस्थाओ के बिना भी हम रहते हैं। तो हमारा रहना इनके अधीन नहीं है। अतः यह अनुभव कर लेना चाहिए कि ये सदा साथ रहने वाले हैं नहीं, क्योंकि ये हमारे हैं नहीं। किसी विधि से भी यह संसार हमारा नहीं है। लौकिक दृष्टि से देखा जाय, दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय, शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय, विवेक शक्ति से देखा जाय, किसी तरह से भी देखा जाय तो यह हमारा है ही नहीं। ऐसे मे इनकी गुलामी करना या रखना बड़ी विचित्र बात है। इस गुलामी का त्याग तो अभी-अभी कर देना चाहिए। एकदम बेफिकर होकर। कुछ भी न रह जाय, संसार न रह जाय, शरीर न रह जाय, तब भी हम तो रहते ही हैं। इनका सयोग सदा रहता नहीं और अभी भी वियोग होता जा रहा है तेजी से। इस वास्ते ऐसी कायरता क्यों लायें। सबकी सेवा करो, सुख पहुँचाओ और जो आदान प्रदान का विधान है, वह करो। परन्तु हार की बात मत करो।

और हार अपने को अच्छी नहीं लगती। यह भीतर से भाती नहीं है। आप इसे क्यों स्वीकार करते हो? भक्ति की दृष्टि से "जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये"। जैसे हो जाय, वैसे रहे। "पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल मे खुश हैं"। सन्तों ने ऐसा कहा है कि "पूरे है वे मर्द जो हर हाल मे खुश हैं"। जैसी अवस्था मे रहे, मस्त रहे। परिस्थिति के वश मे वे नहीं हैं। हम निरन्तर रहने वाले हैं। यह परिस्थिति बनने और बिगड़ने वाली है। वह हमेशा बदलने वाली है, उसके वश मे हो जाना बड़े आश्चर्य की बात है? गीता मे उपदेश आरम्भ करने के बाद ही पहला श्लोक है "न त्वेवाह जातु नास न त्व नेमे जनाधिपाः। न चैव भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।" (गीता २/१२) न तो ऐसा ही है कि हम न ऐसा ही है कि हम पहले भी नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, तब इसमे शोक की, चिन्ता की बात कौन सी है? जो नहीं रहती है वस्तु, हमारे

सामने बिगड़ती है, उसके लिये मलाल (दुःख, शोक, चिन्ता आदि) करेंगे तो बिलकुल बेअकल की बात है। इतनी तो अकल आनी ही चाहिए हममें कि ये साथ मे आये नहीं और इनका साथ बिछुड़ जाना है। तो इनके बिना हम रह नहीं सकते यह क्या बात है? भीतर से घाटा है। सब लोग मौज से रहते हैं, आनन्द से रहते हैं। आप भी कहीं मुसाफिरी में जाते हैं तो घर को छोड़कर जाते ही हैं। धन-सम्पत्ति को छोड़कर चले जाते हैं। कुटुम्बियों आदि को सबको छोड़कर चले जाते हैं। सबको छोड़ इधर-उधर जाते ही रहते हैं। "किसी क्षण भी जिसके बिना रह सकता है, सदैव भी उसके बिना वह रह सकता है यही उसका अनुभव है। एक मिनिट भी जिसके बिना रह सकता है, उम्रभर भी उसके बिना वह रह सकता है। कई वर्षों पहले की बात है। ऋषीकेश स्वर्गाश्रम में हम बट वृक्ष के नीचे रहते थे। एक साधु के पास एक कमण्डल था, और कोई पात्र नहीं था। साधु से साधु बात कह सकता है; गृहस्थ से नहीं कह सकता। सन्त ने मेरे से कहा— एक पात्र हो तो उसमें साग है, दाल है, कुछ हो तो उसमे ले ल। मैंने उससे कहा—'मेरे पास तो है नहीं, अपने किसी को कहने तो जायेंगे नहीं, यदि कोई पूछेगा कि किसी साधु को किसी वस्तु की जरूरत है तो कह देंगे।' मैंने ऐसे कह दिया। फिर दो-तीन दिन बाद वे आये और बोले कि अब मत कहना। कहने लगे २-३ दिन जिसके बिना काम चल सकता है तो उसके बिना महीना भर भी काम चल सकता है। और महीना भर चल सकता है तो उसके बिना जीवन भर भी चल सकता है। एक दिन भी जिसके बिना चल सकता है, तो उसके बिना दस दिन भी चल सकता है तो जीवन भर भी चल सकता है। कैसी मौज की बात है, कैसी बढिया बात है? जिसके बिना हमारा काम चल सकता है तो उसके लिये हम क्यों फँसे? उसके लिये हम क्यों कहे? एक सन्त की बात सुनी। बद्रीनारायण मे रहते थे। हम वहाँ चले गये, जहाँ संत रहते थे, उनसे मिले। साधु के अंगुली मे पीड़ा हो गयी थी। पीड़ा ज्यादा हो रही थी तो मैंने कहा महाराज! यहां अस्पताल है वहां पट्टी करवा लो। दवाई करवा लो। साधु उत्तर देते हैं—"ये पीड़ा तो मैं सह लूँगा" परन्तु "तू दवाई

करदे" यह नहीं सह सकूँगा"। वह पीड़ा ज्यादा होगी जिसको मैं किसी प्रकार भी सह नहीं सकूंगा। आवश्यकता ही कहने सुनने को क्यों पड़े? उमर भर गुलामी, यह सही जाती है हमसे, आश्चर्य की बात है। कितनी बातें सहते हैं? कितनी सहते है। कोई गिनती नहीं।' एक हो तो सह लें। ये साधुओं की बातें हैं।

उनके बिना काम हमारा चलता है तो फिर उसके लिये उमर भर की गुलामी, जगह-जगह की गुलामी, तरह-तरह की गुलामी, व्यक्तियों की गुलामी, वस्तुओं की गुलामी रुपयों की गुलामी, हर वस्तु की गुलामी क्यों करे? ज्यादा से ज्याद मरेंगे; इससे ज्यादा क्या होगा। अधिक से अधिक मरेंगे ही और क्या होगा? गुलामी न करेंगे तो मर जायेंगे। तो क्या गुलामी करते-करते रह जायेंगे? मरना तो पडेगा ही। बन्धन में आकर, फंस कर, गुलाम रह कर, मरे तो गुलामी की गुलामी आगे चलती रहेगी। अतः क्यों, सदा के वास्ते गुलामी को रखें? हृदय से कायरता को निकाल दो, बिलकुल। अभी से उड़ादें गुलामी की दासता को। डरने की कोई बात नहीं है। इतनी ही बात है, जिसे पक्की कर लो कि जागृति में, सुषुप्ति मे, स्वप्न मे, महाप्रलय में 'इसके बिना, इन चीजों के बिना हम रहते हैं रह सकते हैं। ये हमारे बिना रहते हैं तो फिर हम इनके बिना क्यों नहीं रह सकते?

रुपये कमाओ, खर्च करो सब कुछ करो। पर यह हृदय की गुलामी न रखो। यह नहीं कि घर नगर छोड़ कर जंगल में चले जाओ। जंगल में जाओगे तो भी यही तो साथ रहेगा। एक जगह सन्तों की वाणी में आया है "दूधा हारी गाय, भैंस नहीं पालता"। दूध-हारी केवल दूध पीकर रहता है। ऐसे ही हम भी इनकी आशा छोड़कर मौज से रहे।

मन में आशा ही 'परमं दुःख' है। भागवत में आया है "आशाहि परम दुःख" "पराधीन सुपनेहु सुख नाहीं"। आपने अधीनता खरीद ली तो दुःख होगा ही "आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमम् सुखम्"। हृदय में गुलामी नहीं है तो केवल सुखी हो नहीं परमं सुखम्'। लिखा है यानी

परमं सुखं,यानी मौज, आनन्द से रहते हैं। घर का काम कर दो, व्यक्तियों का भी काम कर दो, काम मे सहायता करो, काम में आ जाओ, ठीक है। ये सब काम कर सकते है। परन्तु गुलामी तो ठीक नहीं। यह गुलामी ही बन्धन है। अब बोलो कोई बात हो तो। हृदय की गुलामी नहीं होने में सब स्वतंत्र हैं। उसमे कोई पराधीन नहीं। इसमे कायरता की कोई आवश्यकता नहीं है। और कायरता मान लो तो फंस गये। उनको छोड़ना पड़ता है और उनके बिना रहना पड़ेगा पक्कीबात है फिर कायरता क्यों ?

नारायण नारायण नारायण

—:o:—

(२०) "भगवान् में चित्त कैसे लगायें ?"

"मच्चित्तः सर्व दुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि" (गीता १८।५८)—भगवान् यह सार बात बताते हैं। मेरे में चित्त वाला हो जा, आज्ञा दो। दो बात की आवश्यकता है। एक तो विघ्नों का नाश और दूसरे भगवान् की प्राप्ति। मानों बीच में आने वाली बाधाएं भी हट जायं। और हमारे कार्य की सिद्धि भी हो जाय। तो दोनों बातों के लिए भगवान् कहते हैं। "मच्चित्तः सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि"। और "मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्" (गीता १८।५६) मत्प्रसादात् दोनों मे कहते हैं। 'मत्प्रसादात् शाश्वतं अव्ययं पदं आप्नोति, तो मेरी कृपा से अविनाशी पद की प्राप्ति हो जायेगी। और "मच्चितः सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यति" मेरे प्रसाद से तर जायेगा। विघ्नों से तर जायेगा "मत्प्रसादात्"। मेरी कृपा कैसे प्राप्त होती है ? तो कृपा के लिए 'मच्चित्तः' कहा—भगवान् में चित्त लगावें। 'मच्चित्तः' सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि" और 'मत्प्रसादात् आप्नोति-शाश्वत पदमव्ययम्। एक जगह कहा 'मच्चित्तं सततं भव' (गीता १८।५७)। मेरे में चित्त वाला हो जो। भगवान् में चित्त लगाने से सब काम ठीक हो जाय। बाधाओं का नाश और तत्व की प्राप्ति हो जाय।

अब बात यह रह गई कि भगवान् मे चित्त कैसे लगाया जाय ? दूसरे "मच्चित्तः" किसको कहते हैं ? साधारण रीति से तो यह समझ में आता है कि चित्त से केवल भगवान् का ही चिन्तन हो। और कुछ भी चिन्तन न रहे वह "मच्चित्तः" होता है। ऐसा यदि हरदम ही भगवान् मे रहेगा तो खाना-पीना, उठना-बैठना, चलना-फिरना आदि कैसे होगा ? व्यवहार कैसे होगा ? और गृहस्थ मे रहते हुए काम-धन्धा करना पड़ता है। दुकान का काम है, खेती का काम है, लेन-देन है,। सब प्रकार का धन्धा करना पड़ता है। तो यदि केवल भगवान् में ही चित्त लगा रहे हरदम। तो खाना-पीना भी मुश्किल हो जायेगा; काम-धन्धा तो दूर रहा। तो

'मच्चित्तः' का अर्थ ऐसा नहीं है कि भगवान् में ही चित्त लगा रहे। दूसरी कोई फुरना ही न हो। दूसरी बात याद ही न आवे तो क्या अर्थ है भाई ? जैसे लोभी होता है, लोभी का धन ही इष्ट होता है। लोभी के मन मे रहता है कि पैसे किस तरह पैदा हों। उसका इसमे एक विचार रहता है। ऐसा होने पर भी हरदम वह पैसों का ही चिन्तन करता हो, ऐसी बात नहीं। परन्तु वह पैसों का नुकसान सहन नहीं कर सकता, किसी समय भी। अचानक भी पैसों का नुकसान हो तो वह सह नहीं सकेगा। और ऐसा काम नहीं करेगा जिससे पैसों का नुकसान हो जाय, जान करके। करे लाभ के लिए और नुकसान हो जाय, यह बात अलग है। अपनी तरफ से पैसों का नुकसान वह सह नहीं सकता है। अत्यन्त लोभी है, वह क्या है ? कि वह पैसों में 'चित्त वाला' है। कुटुम्ब मे मोहित होता है, कुटुम्बी होता है वह कुटुम्ब के नाश को सह नहीं सकता। और अपने आप हो जाय तो करे क्या। ध्येय उसका एक होता है न, उस ध्येय मे बाधा नहीं पड़ने देना। ध्येय की सिद्धि ही किसी तरह से वह करता रहता है। पैसा हो कमाना जिसका काम है, जो रात दिन पैसों के काम मे लगा है, वह दूसरी बातों को व्यर्थ समझता है। चाहे भगवत्संबंधी बात कह दो उसको नहीं सुहावेगी। उसके लिए एक ही बात है कि पैसा कैसे मिले ? जैसे उसका ध्येय, लक्ष्य एक बन जाता है इसी तरह से 'भगवान् को प्राप्ति करना है' केवल लक्ष्य बन जाय; दृढ़ उद्देश्य बन जाय तो ऐसा उद्देश्य बन जाने पर वह भगवत्प्राप्ति मे बाधा सह नहीं सकता। झूठ-कपट से धन मिलता है, धन से जो मान हमे मिलता है वह हमे धूल के समान है क्योंकि उससे भगवत्प्राप्ति मे बाधा आती है। परमात्मतत्व की प्राप्ति मे बाधा आती है वह यह सह नहीं सकता। वह 'मच्चित्तः' हो गया। वह ही ध्येय है, एक ही लक्ष्य है उसी की प्राप्ति करना है। और सज्जनो ! यह मानव शरीर है, इसका फल केवल भगवत्प्राप्ति है और कोई है ही नहीं शास्त्रों के देखने से मालूम होता है कि एक परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही मानव शरीर मिला है। आध्यात्मिक ग्रन्थों में कहीं भी नहीं लिखा गया

है कि धन कमाने के लिए मानव शरीर है, भोग भोगने के लिए मनुष्य शरीर है, बढ़िया बढ़िया मकान बनाने के लिए मनुष्य शरीर है, छोरा-छोरी का विवाह कर दिया सगाई सम्बन्ध कर दिया इसलिए मनुष्य शरीर है मुक़दमे विजय करलो इसलिए मनुष्य शरीर है, ऐसा लिखा हुआ कहीं भी नहीं मिलता है। इससे होगा क्या? जितने काम आवश्यक माने जाते हैं, अन्त समय मे कुछ भी होश होगा और विचार होगा तो "हाय मैंने कुछ नहीं किया" कहेगा। अभी जो वक्त नहीं मिलता है वह 'सब कुछ नहीं किया मे भरती होंगे' उस खाते में खतेंगे। इतना मकान बना लिये, इतना धन कमाया अन्त मे क्या काम आया? अन्त समय में कुछ काम नहीं आयेगा। तो यह कुछ नहीं किया मे भरती होने वाला है। जिन कामो मे रात दिन समय लगाया जाता है और समझते हैं कि हम खूब अच्छा काम कर रहे हैं, बड़ी उन्नति कर रहे हैं। परन्तु वे अन्त में कुछ काम आवेगा नहीं। और भजन स्मरण किया है, आध्यात्मिक उन्नति करली है। वह महाराज यहाँ भी साथ रहेगी और मरने पर भी साथ चलेगी। धन के लिए झूठ-कपट किया है, इसमें धन तो यहाँ रह जायेगा और झूठ-कपट (पाप) साथ चलेगा। वह 'पाप' साथ चलेगा और धन यहीं रह जायेगा। फिर भी उसी मे लगे हैं, यह आश्चर्य की बात है। उसके साथ में बढ़िया चीज है उसको तो लेते हैं नहीं। लेते हैं वह साथ चलता नहीं। धन साथ रहता नहीं, घर-जमीन साथ रहता नहीं, कुटुम्ब साथ रहता नहीं। पर उसके लिए रात-दिन उद्योग कर रहे हैं। परन्तु साथ में चलता है भजन-ध्यान, सद्वृत्ति और सद्भाव, अच्छा स्वभाव, श्रेष्ठता, उत्तम स्वभाव। उत्तम स्वभाव को बिगाड़ देते हैं जान जान कर। झूठ-कपट करके, धोखा-बाजी करके, जाल-साजी करके, विश्वासघात करके, सग चलने की पूँजी का बिगाड़ कर देते हैं; ज्ञान-ध्यान को छोड़ देते हैं। और यहाँ रहने वाली चीजों का संग्रह करते हैं और मन मे समझते हैं कि हम सुखी होने का कार्य करते हैं, यह बड़ी भारी आसक्ति की बात है। धन-सम्पत्ति और भोगों का चिन्तन करने वाले के तो पाप का संग्रह होगा ही क्यों कि उसका उद्देश्य ही यह हो गया।

यदि उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति होगा तो घर (ससार) का काम करते हुए भी सबका सब भक्ति मे दाखिल हो जायेगा, कितनी विलक्षण बात है ? लक्ष्य हमारा परमात्मा है, ध्येय हमारा परमात्मा है तो फिर यह परलोक के लिए है, यह इस लोक के लिये है, ऐसा न होकर केवल भगवत्प्राप्ति के लिए होगा। और उससे इस लोक मे भी उन्नति होगी। वह ठगा नहीं करेगा, झूठ-कपट नहीं करेगा, धोखा-घडी नहीं करेगा, क्योंकि उसे भगवत्-प्राप्ति करना है। इनसे प्राप्ति होती नहीं, इस वास्ते वह पाप करेगा नहीं, अन्याय करेगा नहीं। मान लो, धोखा देने से कोई समझता है कि मैंने बड़ी चतुराई का कार्य किया है, पर धोखा देने से पाप तो होगा ही, चित्त मे भी अशान्ति होगी। बडे आश्चर्य की बात है। हमने देखा है। आपने भी देखा होगा। गली (रास्ते) मे हम चलते रहते हैं, कुत्ते सोते रहते हैं। जो शान्त होता है वह सोता है, वह आँख खोलकर देखता है और सोता रहता है। मस्त है। जो कुत्ता आपको भौंकेगा, वह सो नहीं सकेगा। भौंकेगा फिर पास आवेगा, फिर भौंकेगा और पास आवेगा। जिसके मन मे वैर से नहीं, चैन सोता है। और मन मे द्वेष पैदा हो गया वह शान्ति से, आराम से बैठ नहीं सकता। उसको दुख कौन दे रहा है। जो उसका मन का स्वभाव है, वह दुःख दे रहा है। ऐसे दूसरे को दुःख देने का भाव पैदा हो तो वह शान्ति से रह सकेगा नहीं। अपना नुकसान करेगा। यहाँ भी सताप पैदा कर लेगा। वैर कर लेगा। और वह उसी के लिए उपाय करेगा। और यदि सौम्य भाव रहेगा और शुद्ध आचरण करेगा तो स्वयं को शान्ति रहेगी, अपने को सुख मिलेगा, परलोक सुधर जायेगा, लोग महिमा करेंगे। इस वास्ते इसमे सब तरह का फायदा और उसमे सब तरह का नुकसान है। धन इकट्ठा कर लेंगे। झूठ कपट से पर झूठ-कपट करके कर लोगे यह हाथ की बात है क्या ? पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पटकटि नहिं पेट अघाहीं ॥' (अयोध्या २५०/५) रात-दिन पाप करते-करते बीतते हैं। परन्तु महाराज ! लज्जा निवारण के लिए भी कपड़ा नहीं, पेट भरने के लिए पूरा अन्न नहीं, यह दशा है) फिर भी उसी

में लग रहे हैं। क्या बात है ? विश्वास नहीं। इस वास्ते सज्जनों ! एक ही बात खास है। "व्यवसायात्मिका बुद्धि रेकेह कुरुनन्दन" (गोता २/४१) यह निश्चय है कि परमात्मा को प्राप्त करना है, हमे उसी तरफ चलना है, अब उसकी बाधा हम नहीं सह सकते। ऐसा निश्चय होने पर इसमे बाधाएं भगवान् सब दूर कर देंगे। थोड़ा-सा आप विचार करो—आपके भरोसे कोई हो जाता है तो आप भी उसकी रक्षा करते हो, उसका आप कायदा रखते हो। तो फिर ऐसे परम दयालु परमात्मा के भरोसे रहेगा, और उनका भजन करेगा, तो क्या वह रक्षा नहीं करेगा ? बड़ी भारी रक्षा करेंगे। हम समझ हो नहीं सकते, इतना काम भगवान् करते हैं या नहीं करते हैं इसकी परवाह न करके भी वह जगह-जगह आपकी रक्षा करते हैं। "विश्वम्भरो देव सः किं भक्तानुपेक्षते।" जो सब संसार मात्र का भरण-पोषण करता है क्या वह भक्तों को उपेक्षा करेगा ? यह सेना है क्या ? हो नहीं सकता कभी। वह ऐसा संरक्षक है, सर्व समर्थ है। वह हमारा है, और फिर भी हम दुःख पाते है, यही आश्चर्य है। बड़े आश्चर्य की बात है। इस वास्ते एक बिचार हो जाय, तो निहाल हो जाय। इस रास्ते पर आने का विचार होते ही सुखी होने लगते हैं। अंबरीष राजा था। दुर्वासा ऋषि आये धोखा देने के लिये। एकादशी व्रत के पालने के लिए गंगा जल तुलसी-चरणामृत ले लिया। दुर्वासा ऋषि आकर के बिगड़े। वह साथ छोड़ता है बेचारा। दुर्वासा नाराज हो रहे हैं तो सुदर्शनचक्र उनके पीछे लगा। भागे वहाँ से दुर्वासा ऋषि। शंकर, ब्रह्मा सबके पास गये। विष्णु भगवान् के पास गये कि भगवान् यह आपका चक्र मुझे तंग कर रहा है, आप रक्षा करो, रक्षा करो। भगवान् ने कह दिया कि भाई यह मेरे हाथ को बात नहीं है। साफ कह दिया भगवान् ने "अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विजः।" मैं तो अशक्त (शक्तिहीन) हूँ। मेरे अधीन यह बात नहीं है। सुदर्शन-चक्र भगवान् का, उससे रक्षा के लिए भी भगवान् कहते हैं कि मेरे हाथ की बात नहीं। "अहं भक्त पराधीनः"—मैं भक्त के अधीन हूँ। हाँ ! रक्षा का उपाय बताता हूँ। रक्षा······ ····।

वही अम्बरीष कर सकता है, उसी के पास जाओ। "ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् हित्वा "मां शरणं याताः" (श्रीमद्भागवत् ८/४-/६५) वह स्त्री, धन, सम्पत्ति, वैभव बड़े-छोटे सबको छोड़कर परलोक की भी परवाह नहीं करता कि क्या दशा होगी? मैं भगवान् का हूं केवल ऐसा मानता है। अर्थात् मेरे परायण है। इस प्रकार जो मेरे परायण हुआ है, 'तांस्त्यक्तुमुत्सहे" जो सबको छोड़कर मेरे को ही अपना लक्ष्य बना लिया है, ऐसे को मैं कैसे छोड़ सकता हूं? इतनी रक्षा करने वाले हैं भगवान्। अपने होने वाले भगवान्। उनके परायण होने से हमारा जन्म सफल हो जाय। फिर भी संसार का आदर देखते हैं, आश्चर्य की बात है। एक आदमी नमस्कार कर देता है तो अच्छा लगता है; पर अनन्त ब्रह्माण्ड नायक जहां आदर करें, सत्कार करें तो संसार का आदर उसके सामने क्या है? दुनियाँ का आदर कुछ नहीं है। ऐसा बड़ा भारी लाभ हम ले सकते हैं केवल "मच्चित्तः" होकर। "मच्चित्तः सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि"। मेरी कृपा से सब दुर्गों को तर जायगा, पार हो जायगा। पार हो जायगा। मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्"। "मच्चितः सततं भव"। मेरी कृपा से शाश्वत अव्यय पद को प्राप्त हो जायगा।

'मच्चित्तः"—भगवान् मे चित्त लगाना क्या है? लक्ष्य एक परमात्मा को बनाना है। लक्ष्य बनाना अपने को आता है ही। पढ़ाई करने वाला पढ़ाई को अपना लक्ष्य बनाता है। धन का लोभी धन को लक्ष्य बना लेता है। जिसे जो काम करना है, वह उसका लक्ष्य बना लेता है एवं उसके अनुसार कार्य करता है ही। इस वास्ते एक ही उद्देश्य बना लेवे सेवा का तो सब काम हो जायेगा। "एकै साधे सब सधे सब साधे सब जाय"। फिर ऐसा कोई सा भी काम नहीं है, जो सिद्ध न होवे। यह विचार कर तैयार हो जाना चाहिए।

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।

नारायण